Master of Arts (Hindi)

Semester – II

Paper Code –

VISHES RACHNAKAR KABIRDAS-II

विशेष रचनाकार कबीरदास –II

विषयसूची

क्रमांक	शीर्षक	पृष्ठ संख्या
1.	व्याख्या खण्ड (खंड–क)	
	साखी	4
2.	आलोचना खंड –(ख)	
	1. भक्ति आंदोलन और कबीर	71
	2. निर्गुण मत और कबीर	77
	3. निर्गुण काव्य परम्परा और कबीर	82
	4. मध्यकालीन धर्म–साधना और कबीर	87
	5. कबीर का समय	100
	6. कबीर का जीवन वृत्त	104
	7. कबीर का कृतित्व	109
	8. कबीर का समाज दर्शन	116
	9. कबीर का दार्शनिक चिंतन	122
	10. कबीर की भक्ति भावना	128

खंड –(क)
व्याख्या खण्ड

1. साखी

1.1 गुरुदेव कौ अंग

सतगुर सवांन को सगा, सोधी सईं न दाति।
हरिजी सवांन को हितू, हरिजन सईं न जाति।।1।।
बलिहारी गुर आपणैं द्यौं हाड़ी के बार।
जिनि मानिष तैं देवता, करत न लागी बार।।2।।
सतगुर की महिमा अनंत, अनंत किया उपगार।
लोचन अनंत उघाड़िया, अनंत दिखावणहार।।3।।
राम नाम के पटतरे, देबे कौ कुछ नाहिं।
क्या ले गुट सन्तोषिए हौंस रही मन नाहिं।।14।।
सतगुर के सदके करूं, दिल अपणी का साछ।
सतगुर हम स्यूं लड़ि पड़ा, महकम मेरा बाछ।।5।।
सतगर लई कमांण करि, बांहण लागा तीर।
एक जु बाह्यां प्रीति सूं, भीतरि रह्या सरीर।।6।।
सतगुर सांवा सूरिवां, सबद जू बाह्या एक।
लागत ही में मिलि गया, पढ़ा कलेजै छेक।।7।।
सतगुर मार्या बाण भरि, धरि करि सुधी मूठि।
अंगि उघाड़े लागिया, गई दवा सं फूंटि।।8।।
हंसै न बोलै उनमनी, चंचल मेल्ह्या मारि।
कहै कबीर भीतरि भिद्या, सतगुर के हथियार।।9।।
गूंगा हूवा बावला, बहरा हुआ कान।
पाऊं थे पंगुल भया, सतगुर मार्या बाण।।10।।
पीछे लागा जाइ था, लोक वेद के साथि।
आगै थें सतगुर मिल्या, दीपक दीया हाथि।।11।।
दीपक दीया तेल भरि, बाती दई अघट्ट।

पूरा किया बिसाहूणां, बहुरि न आंवौं हट्ट।।12।।
ग्यान प्रकास्या गुर मिल्या, सो जिनि बीसरि जाइ।
जब गोबिंद कृपा करी, तब गुर मिलिया आइ।।13।।
कबीर गुर गरवा मिल्या, रलि गया आटैं लूंण।
जाति पांति कुल सब मिटै, नांव धरोगे कौण।।14।।
जाका गुर भी अंधला, चेला खरा निरंध।
अंधे अंधा ठेलिया, दून्यूं कूप पड़त।।15।।
नां गुर मिल्या न सिष भया, लालच खेल्या डाव।
दुन्यू बूड़े धार मैं, चढ़ि पाथर की नाव।।16।।
चौसठ दीवा जोइ करि, चौदह चन्दा मांहि।
क्या ले गर सन्तोषिए, हौंस रही मन माहि।।
तिहिं घरि किसको चानिर्णी, जिहि घरि गोबिंद नाहिं।।17।।
निस अधियारी कारणें, चौरासी लख चंद।
अति आतुर ऊदै किया, तऊ दिष्टि नहिं मंद।।8।।
भली भई जू गुर मिल्या, नहीं तर होती हाणि।
दीपक दिष्टि पतंग ज्यूं, पड़ता पूरी जांणि।।19।।
माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि इवे पड़त।
कहै कबीर गुर ग्यान थै, एक आध उबरंत।।20।।
सतगुर बपुरा क्या करे, जे सिषही माहे चूक।
भावै त्यूं प्रमोधि ले, ज्यूं वसि बजाई फूक।।21।।
संसै खाया सकल जुग, संसा किनहुं न खद्ध।
जे बेधे गुर अषिरां, तिनि संसा चुणि चुणि खद्ध।।22।।
चेतनि चौकी बैसि करि, सतगुर दीन्हां धीर।
निरभै होइ निसंक भजि, केवल कहै कबीर।।23।।
सतगुर मिल्या त का भयां, जे मनि पाड़ी भोल।
पासि बिनंठा कप्पड़ा, क्या करै बिचारी चोल।।24।।
बूड़े थे परि ऊबरे, गुर की लहरि चमंकि।
भरा देख्या जरजरा, (तब) ऊतरि पड़े फरंकि।।।25।।
गुरु गोविन्द तौ एक है, दूजा यह आकार।
आपा मेट जीवत मरै, तो पावै करतार।।26।।
कबीर सतगुर ना मिल्या, रही अधूरी सीप।

स्वांग जती का पहरि करि, घरि घरि मांगै भीण।।27।।

सतगुर सांचा सूरिवां, तातै लोहिं लुहार।

कसणो दे कंचन किया, ताई लिया ततसार।।28।।

थापणि पाई थिति भई, सतगुर दीन्हीं धीर।

कबीर हीरा बणजिया, मानसरोवर तीर।।29।।

निहचल निधि मिलाइ तत, सतगुर साहस धीर।

निपजी मैं साझी घणां, बांटे नहीं कबीर।।30।।

चौपड़ि मांडी चौहटै, अरध उरध बाजार।

कहै कबीरा राम जन, खेलौ संत विचार।।31।।

पासा पकड़ा प्रेम का, सारी किया सरीर।

सतगुर दावा बताइया, खेलै दास कबीर।।32।।

सतगुर हम सूं रीझि करि, एक कह्या प्रसंग।

बरस्या बादल प्रेम का भीजि गया अब अंग।।33।।

कबीर बादल प्रेम का, हम परि बरष्या आइ।

अंतरि भीगी आत्मां हरी भई बनराइ।।34।।

पूरे सूं परचा भया, सब दुख मेल्या दूरि।

निर्मल कीन्हीं आत्मां ताथै सदा हजूरि।।35।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहे डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' खंड से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में कुल 809 दोहों को 59 अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'गुरुदेव को अंग' साखी का प्रथम अंग है, जिसमें कुल 35 दोहे संकलित हैं। इन साखियों में कबीर साहब ने सद्गुरु की महिमा की चर्चा की है। वे एक सद्गुरु को ईश्वर से भी ऊंचा स्थान देते हैं। कबीर के अनुसार सद्गुरु शिष्य के सभी ज्ञानचक्षुओं को परमज्ञान के प्रकाश से भर देता है, जिससे वह सच–झूठ, अच्छा–बुरा और पाप–पुण्य में विभेद कर पाता है।

दोहा सं. 2

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि मैं अपने गुरु पर प्रत्येक क्षण सैकड़ों बार न्यौछावर जाता हूं जिसने मुझको बिना विलंब के मनुष्य से देवता कर दिया। तात्पर्य है कि सद्गुरु ने मेरी दुर्बलताओं अर्थात विषय–वासनाओं को दूर कर मुझे दिव्यगुणयुक्त बना दिया।

दोहा सं. 3

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि सद्गुरु की महिमा, उनका गौरव असीम है, अपरंपार है। उन्होंने मेरा अनंत उपकार किया है। उन्होंने मेरे अनंत ज्ञान–चक्षुओं को खोल दिया है। कहने का तात्पर्य यह है कि सद्गुरु ने मेरे अज्ञान को समाप्त करके मुझे दिव्य–ज्ञान प्रदान किया।

दोहा सं. 8

व्याख्या

इस दोहे में कबीर साहब जी कहते हैं कि सद्गुरु ने सदुपदेश रूपी बाण की मूठ को सीधा पकड़कर साधक पर इस तरह से प्रहार किया है कि वह जोरों से उसके नंगे अंगों पर लगा। उसको यह बाण लगते ही दावाग्नि–सी फूट पड़ी। जिसमें सांसारिक विषय–वासनाएं, मोह–माया इत्यादि के आवरण जल गए। इन आवरणों के जलते ही साधक का मन शद्ध सोने की तरह हो जाता है। तदुपरांत उसका परम तत्व रूपी परमात्मा से मिलन हो जाता है।

दोहा सं. 9

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि साधक उन्मनी अवस्था में पहुंचने पर न तो हंसता ही है और न ही किसी से बोलता है, अर्थात वह सांसारिक हास–विलास के उदासीन हो जाता है। उसकी चंचल वृत्तियां गुरु के सदुपदेश रूपी अमोघ–अस्त्र सेना जाती है। इस प्रकार सद्गुरु के प्रेम रूपी बाण ने साधक के ह्रदय को बेध दिया। जिससे उसका मन और प्राण एक हो गए।

दोहा सं. 12

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि मेरे गुरु ने मुझे प्रेम–तेल से परिपूर्ण ज्ञान की दीपक एवं कभी न घटने वाली बत्ती दी है। जिसके प्रकाश में संसार रूपी बाजार में अपना क्रय–विक्रय कर लिया है। अब मुझे इस संसार में बार–बार आने की आवश्यकता नहीं है।

दोहा सं. 15

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि अज्ञानी शिष्य और अज्ञानी गुरु की निंदा करते हुए कहते हैं कि जिस शिष्य का गुरु भी अंधा अर्थात अज्ञानी है, वह शिष्य तो पूर्णरूप से अंधा अर्थात अज्ञानी होगा। इस प्रकार एक अंधा जब दूसरे अंधे को धकेलेगा तो अपने साथ दूसरे को भी अंधकार के कुएं में ले डूबेगा।

दोहा सं. 20

व्याख्या

इस साखी में कबीर साहब जी ने माया की तुलना दीपक से तथा मनुष्य की तुलना पतंगे से की है। जिस प्रकार पतंगा दीपक की ओर बार–बार आता है और उस पर मोहवश अपना जीवन न्योछावर कर देता है उसी प्रकार मनुष्य भी विषय–वासनाओं में फंसकर भ्रमवश उसी पर जा गिरता है अर्थात अपना जीवन नष्ट कर लेता है। इसी भाव को अपनी इस साखी में आगे बढ़ाते हुए कबीर साहब कहते हैं कि सद्गुरु से ज्ञान प्राप्त करके कोई एकाध विरला व्यक्ति ही माया के बंधन से ऊपर उठ सकता है अर्थात विषय–वासनाओं के चक्कर में नही फंसता।

दोहा सं. 31

व्याख्या

इस दोहे में कबीर साहब जी कहते हैं कि इस संसार रूपी चतुर्मुख बाजार के मध्य जीवन रूपी चौपड़ का खेल बिछा दिया गया है और इसके ऊपर और नीचे दोनों ओर चक्रों का बाजार लगा हुआ हैं। जिसे प्रभु–भक्त एवं संत

अत्यंत सोच–विचार कर खेलते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि वे सांसारिक विषय–वासनाओं में न फंसकर प्रभु–भक्ति की ओर उन्मुख होते हैं।

दोहा सं. 33

व्याख्या

इस साखी में कबीर साहब जी ने सद्गुरु के प्रसन्न हो जाने की बात कही है, वे कहते हैं कि सद्गुरु ने मेरी भक्ति से प्रसन्न होकर मुझे एक ऐसा रहस्य बताया है कि जिससे प्रेम का बादल इस तरह बरसा कि मेरा सारा शरीर भीग गया। कहने का आशय यह है कि मेरी भक्तिभावना से प्रसन्नचित होकर सद्गुर ने मेरे ऊपर ज्ञान रूपी बादल को बरसाया जिससे मेरा रोम–रोम भीग गया यानी उस पर जो मोह–माया की धूल जमी थीं, वह साफ हो गई।

1.2 सुमिरण कौ अंग

कबीर कहता जात हूँ, सुणता है सब कोइ।
राम कहें भला होइगा, नहिं तर भला न होइ।।1।।

कबीर कहै मैं कथि गया, कथि गया ब्रह्म महेस।
राम नाँव सतसार है, सब काहू उपदेस।।2।।

तत तिलक तिहूँ लोक मैं, राम नाँव निज सार।
जब कबीर मस्तक दिया, सोभा अधिक अपार।।3।।

भगति भजन हरि नाँव है, दूजा दुक्ख अपार।
मनसा बचा क्रमना, कबीर सुमिरण सार।।4।।

कबीर सुमिरण सार है, और सकल जंजाल।
आदि अंति सब सोधिया, दूजा देखौं काल।।5।।

चिंता तौ हरि नाँव की, और न चिंता दास।।
जे कछु चितवैं राम बिन, सोइ काल कौ पास।।6।।

पंच सँगी पिव पिव करै, छटा जू सुमिरे मन।
मेरा मन सुमिरै राम कुँ, मेरा मन रामहिं आहि।।7।।

मेरा मन सुमिरै राम कूँ, मेरा मन रामहिं आहि।
अब मन रामहिं ह्वै रह्या, सीस नवावौं काहि।।8।।

तूं तूं करता तूं भया, मुझ मैं रही न हूँ।
वारी फेरी बलि गई, जित देखौं तित तू।।9।।

कबीर निरभै राम जपि, जब लग दीवै बाति।
तेल घट्या बाती बुझी, (तब) सोवैगा दिन राति।।10।।

कबीर सूता क्या करे, काहे न देखै जागि।

एक दिनाँ भी सोवणाँ, लंबे पाँव पसारि।।11।।

क्बीर सूता क्या करै, काहे न देखै जागि।

जाका संग तैं बीछुड़ा, ताही के संग लागि।।12।।

कबीर सूता क्या करै उठि न रोवै दुक्ख।

जाका बासा गोर मैं, सो क्यूँ सोवै सुक्ख।।13।।

कबीर सूता क्या करै, गुण गोबिंद के गाड़।

तेरे सिर परि जम खड़ा, खरच कदे का खाइ।।14।।

कबीर सूता क्या करै, सुताँ होइ अकाज।

ब्रह्मा का आसण खिस्या, सुणत काल को गाज।।15।।

केसो कहि कहि कुकिये, नाँ सोइयै असरार।

राति दिवस के कूकणौ, (मत) कबहूँ लगै पुकार।।16।।

जिहि घटि प्रीति न प्रेम रस, फुनि रसना नहीं राम।

ते नर इस संसार में, उपजि षये बेकाम।।17।।

कबीर प्रेम न चाषिया, चषि न लीया साव।

सूने घर का पाहुणा, ज्यूँ आया त्यूँ जाव।।18।।

पहली बुरा कमाइ करि, बाँधी विष की पोट।

कोटि करम फिल पलक मैं, (जब) आया हरि की वोट।।।19।।

कोटि क्रम पेलै पलक मैं, जे रंचक आवै नाउँ।

अनेक जुग जे पुन्नि करै, नहीं राम बिन ठाउँ।।20।।

जिहि हरि जैसा जाणियाँ, तिन कूँ तैसा लाभ।

ओसों प्यास न भाजई, जब लग धसै न आभ।।।21।।

राम पियारा छाड़ि करि, करै आन का जाप।

बेस्वाँ केरा पूत ज्यूँ, कहे कौन तूं बाप।।।22।।

कबीर आपण राम कहि, औरां राम कहाइ।

जिहि मुखि राम न ऊचरे, तिहि मुख फेरि कहाइ।23।।

जैसे माया मन रमै, यूँ जे राम रमाइ।

(तौ) तारा मण्डल छाँड़ि करि, जहाँ के सो तहाँ जाइ24।।

लूटि सके तो लूटियो, राम नाम है लूटि।

पीछे ही पछिताहुगे, यहु तन जैहै छूटि।।25।।

लूटि सके तो लूटियो, राम नाम भण्डार।

काल कंठ तै गहैगा, रूधे वसू दुवार।।26।।

लम्बा मारग दूरि घर, विकट पंथ बहु मार।

कहौ संतो क्यूँ पाइये, दुर्लभ हरिवीवार।।27।।

गुण गाये गुण ना कटै, रटै न राम बियोग।

अह निसि हरि ध्यावै नहीं, क्यूँ पावै दुरलभ जोग।28।।

कबीर कठिनाई खरी, सुमिरता हरि नाम।

सूली ऊपरि नट विद्या, गिरूं तं नाहीं ठाम।।29।।

कबीर राम ध्याइ लै, जिभ्या सौं करि मंत।

हरि साग जिनि बीसरे, छीलर देखि अनंत।।30।।

कबीर राम रिझाइ लै, मुखि अमृत गुण गाइ।

फूटा नग ज्यूँ जोड़ि मन, संधे संधि मिलाइ।।31।।

कबीर चित्त चमकिया, चहुँ दिस लागी लाइ।

हरि सुमिरण हाथू घड़ा, बेगे लेहु बुझाइ।।32।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहे डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली । 'साखी' खंड से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों को अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'सुमिरण को अंग' साखी का दूसरा अंग है, जिस कुल 32 दोहे संकलित हैं। इन साखियों में कबीर साहब जी ने परमतत्व के सुमिरन के महत्व पर बल दिया है। कबीर साहब जी के अनुसार ईश्वर का नाम–स्मरण ही प्रभु–भक्ति का तत्व है।

दोहा सं. 4

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि भगवान की भक्ति एवं उनका भजन कीर्तनादि उनके नाम–स्मरण के अंतर्गत ही आ जाते हैं। दूसरे नाम अपार दुख प्रदान करने वाले हैं। कहने का तात्पर्य है कि भक्ति के नाम किए जाने वाले आडंबरों से परम तत्व की प्राप्ति नहीं हो सकती। वे तो केवल दुख के कारण हैं। इसलिए कबीर साहब जी कहते हैं कि मन, वाणी और कर्म से प्रभु–स्मरण करना ही सार तत्व है। वही हमें मुक्ति–मार्ग दिखला सकता है।

दोहा सं. 7

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि साधक ने अपनी पांचों इंद्रियों व छठे मन से राम–नाम की रट चातक पक्षी के समान लगा रखी है। राम के नाम की रट लगाते–लगाते साधक साधना के चरमोत्कर्ष पर पहुंच जाता है जहां उसे

राम–नाम रूपी रत्न–धन की प्राप्ति हो जाती है। कहने का तात्पर्य यह कि जब साधक मन को वश में करके चातक पक्षी के समान स्वाति नक्षत्र से ही जल ग्रहण करने की ठान लेता है तब उसे राम रूपी मोती प्राप्त हो जाता है।

दोहा सं. 9

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि भगवान! तेरा नाम–स्मरण करते–करते मैं तुम्हारा ही स्वरूप हो गया हूं। जिसके फलस्वरूप मुझ में अहंभाव नहीं रहा। कहने का तात्पर्य यह है कि मेरा पृथक–अस्तित्व रहा ही नहीं। अहं के समाप्त होने के बाद में आप पर बार–बार बलिहारी जाता हूं, क्योंकि मुझे अब सर्वत्र आपका रूप–स्वरूप ही दिखाई देता है।

दोहा सं. 12

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि हे मनुष्य! तू अज्ञानावस्था में सोकर अपने जीवन को क्यों नष्ट कर रहा हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि तू सांसारिक मोहपाश में पड़कर उस परम तत्व को भूल गया है और अपने जीवन को व्यर्थ में ही नष्ट कर रहा है। तू जागकर और ज्ञान प्राप्त करके वास्तविकता को क्यों नहीं जानता। जिस परम तत्व से तू विलग हो गया है, उसी के साथ पुनः क्यों नहीं हो लेता। कहने का तात्पर्य यह है ''कि मानव और परमात्मा के मध्य अंश और अंशी का संबंध है लेकिन मोहपाश के कारण वह उसे भूल जाता है, परंतु परम तत्व का स्मरण करके वह अज्ञानावस्था से ज्ञानावर को प्राप्त कर लेता है।

दोहा सं. 19

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि हे मनुष्य! तूने पहले तो अर्थात अपने पूर्वजन्म में अनेक प्रकार के पापों, कुकर्मों को कमाया और सांसारिक विषय–वासनाओं की जहर की गठरी बांध ली। कहने का अभिप्राय यह है कि तुमने सभी पापादि कुकर्म पर्याप्त मात्रा में किए, परंतु जब परम तत्वरूपी परमात्मा का स्मरण किया, उसका आश्रय लिया तब करोड़ों कर्म पल भर में ही तिरोहित हो गए, समाप्त हो गए। अतः प्रभु–सुमिरण में अपने को व्यस्त रख।

दोहा सं. 21

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं जिसने परमात्मा को जैसा जाना है अर्थात जिसने प्रभु के जिस रूप–स्वरूप को जैसी दृ ष्टि से देखा है, उसको वैसा ही लाभ होता है। केवल ओस चाटने से प्यासे व्यक्ति की प्यास नहीं बुझती। उसकी प्यास तो तब तक नहीं बुझती जब तक उसके मुख में पानी नहीं घुसता अर्थात उसे पूर्ण रूप से पानी की प्राप्ति नहीं होती। उसका शमन तो पर्याप्त जल से ही संभव है। कहने का अभिप्राय यह है कि भगवद्–भक्ति के सिवाय अन्य देवताओं की स्तुति अथवा भक्ति ओस के समान है, जो भ्रम की ओर अग्रसर करती है। अतः मनुष्य को जल रूपी परमात्मा की भक्ति करनी चाहिए।

दोहा सं. 24

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि हे मानव! जिस प्रकार तेरा मन माया में रमा रहता है अर्थात विषय–वासनाओं में

तुम्हारा मन लिप्त रहता है, इनके अतिरिक्त तुम्हें कुछ भी दिखाई नहीं देता। उसी प्रकार यदि तुम राम–नाम स्मरण में अपना मन लगा लो, उसका बार–बार स्मरण करो तो तारामंडल अर्थात आवागमन के बंधन से मुक्ति प्राप्त कर तुम्हें परमात्मा का सान्निध्य मिल जाएगा। कहने का आशय यह है कि जहां परम तत्व रूपी परमात्मा का निवास है, ऐसा करने पर तुम वहीं पहुंच जाओगे।

दोहा सं. 31

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि हे प्राणी! तू अपने मुख से उस परम तत्व परमात्मा के अमृत रूपी गुणों का गान कर उसे प्रसन्न कर ले। कहने का आशय यह है कि अमृत के समान मीठे वचनों से ही परमात्मा खुश होंगे जिससे तुम्हारा जीवन आनंदमय होगा। कबीर साहब जी आगे कहते हैं कि तू अपना मन प्रभु से उसी प्रकार मिला ले जिस प्रकार जौहरी फूटे हुए नग की संधि मिलाकर जोड़ देता है और वह पुनः अपने अस्तित्व में, अपने रूप–स्वरूप को धारण कर लेता है। अतः हे मानव! तुम्हें मन और मुख को एक करके परमात्मा के अमृत रूपी गुण का ज्ञान करना चाहिए।

1.3 बिरह कौ अंग

रात्यूँ रूंनी बिरहनी, ज्यूँ बंचौ कुंज।
कबीर अंतर प्रजल्या, प्रगट्या बिरहा पुंज।।1।।
अबर कुंजाँ कुरलियाँ, गरिज भरे सब ताल।
जिनि थे गोविंद बीछुटे, तिनके कौण हवाल।।2।।
चकवी बिछुटी रैणि की, आइ मिली परभाति।
जे जन बिछुटे राम , ते दिन मिले न राति।।3।।
बासुरि सुख नाँ रैणि सुख, ना सुख सुपिनै माँहि।
कबीर बिछुट्या राम तूं, ना सुख धूप न छाँह।।4।।
बिरहनि ऊभी पंथ सिरि, पंथी बूझै धाइ।
एक सबद कहि पीव का, कब रे मिलैगे आइ।।5।।
बहुत दिनन की जोवती, बाट तुम्हारी राम।
जिव तरसै तुझ मिलन कूँ, मनि नाहीं विश्राम।।6।।
बिरहिन ऊठे भी पड़े, दरसन कारनि राम।
मूवाँ पीछे देहुगे, सो दरसन किहिं काम।।7।।
मूवाँ पीछे जिनि मिलै, कहै कबीरा राम।
पाथर घाटा लोह सब, (तब) पारस कौंणे काम।।8।।
अंदे सड़ा न भाजिसी, संदे सो कहियाँ।
के हरि आयां भाजिसी, के हरि ही पासि गयां।।9।।

आइ न सकौ तुझ पै, सकूँ न तूझ बुझाइ।
जियरा यौही लेहुगे, बिरह तपाइ तपाइ।।10।।
यहु तन जालौं मसि करूँ, ज्यूँ धूवाँ जाइ सरग्गिा
मति वै राम दया, करै, बरसि बुझावै अग्गि।।11।।
यहु तन जालै मसि करौं, लिखौं राम का नाउँ।
लेखणिं करूँ करंक की, लिखि लिखि राम पठाउँ।।12।।
कबीर पीर पिरावनी, पंजर पीड़ न जाइ।
एक ज पीड़ परीति की, रही कलेजा छाइ।।13।।
चोट सताड़ी बिरह की, सब तन जर जर होइ।
मारणहारा जाँणिहै, के जिहिं लागी सोइ।।14।।
कर कमाण सर साँधि करि, खैचि जू माया माँहि।
भीतरि भिद्या सुमार है, जीवै कि जीवै नाँहि।।15।।
जबहूँ माया बैंचि करि, तब मैं पाई जाँणि।
लांगी चोट मरम्म की, गई कलेजा जाँणि।।16।।
जिहि सर मारी काल्हि, सो सर मेरे मन बस्या।
तिहि सरि अजहूँ मारि, सर बिन सच पाऊँ नहीं।।17।।
बिरह भुवंगम तन बसै, मंत्रा न लागै कोइ।
राम बियोगी ना जिवै, जिवै त बीरा होइ।।18।।
बिरह भुवंगम पैसि करि, किया कलेजै घाव।
साधू अंग न मोड़ही, ज्यूँ भावै त्यूँ खाव।।19।।
सब रग तंत रबाब तन, बिरह बजावै नित्त।
और न कोई सुणि सके, के साई के चित्त।।20।।
बिरहा बिरहा जिनि कहौ, बिरहा है सुलितान।
जिह घटि बिरह न संचरै, सो घट सदा मसान।।21।।
अंषड़ियाँ झाई पड़ी, पंथ निहारि निहारि।
जीभड़ियाँ छाला पड़ूया, राम पुकारि पुकारि।।22।।
इस तन का दीवा करौं, बाती मेल्यूँ जीव।
लोही सींचौ तेल ज्यूँ, कब मुख देखौं पीव।।23।।

नैना नीझर लाइया, रहट बहै निस जाम।
पपीहा ज्यूँ पिव पिव करौं, कबरू मिलहुगे राम।।24।।
अंघड़िया प्रेम कसाइयाँ, लोग जाँणे दुखड़ियाँ।
साँई अपणे कारणै, रोइ रोइ रतड़िया।।25।।
सोई आँसू सजणाँ, सोई लोक बिड़ाँहि।
जे लोइण लोंहीं चुवै, तौ जाँणों हेत हियाँहि।।26।।
कबीर हसणाँ दूरि करि, करि रोवण सौं चित्त।
बिन रोयाँ क्यूँ पाइये, प्रेम पियारा मित्त।।27।।
जौ रोऊँ तो बल घटे, हँसौं तो राम रिसाइ।
मनही माँहि बिसूरणा, ज्यूँ घुण काठहि खाइ।।28।।
हंसि हंसि कंत न पाइए, जिनि पाया तिनि रोइ।
जो हाँसेही हरि मिलै, तो नहीं दुहागनि कोइ।।29।।
हाँसी खेलौ हरि मिलै, तौ कौण सहे परसान।
काम क्रोध त्रिष्णा तजै, ताहि मिलैं भगवान।।30।।
पूत पियारो पिता कौं, गौहनि लागा धाइ।
लोभ मिठाई हाथ दे, आपण गया भुलाइ।।31।।
डारि खाँड़ पटकि करि, अंतरि रोस उपाइ।
रोवत रोवत मिलि गया, पिता पियारे जाइ।।32।।
नैना अंतरि आचरूँ, निस दिन निरषौं तोहि।
कब हरि दरसन देहुगे, सो दिन आवै मोहि।।33।।
कबीर देखत दिन गया, निस भी देखत जाइ।
बिरहणि पीव पावे नहीं, जियरा तलपै भाइ।।34।।
के बिरहनि कू मींच दे, के आपा दिखलाइ।
आठ पहर का दाझणां, मोपै सह्या न जाइ।।35।।
बिरहणि थी तो क्यूँ रही, जली न पीव के नालि।
फाड़ि फुटोला धज करौं, कामलड़ी पहिराउँ।
रह रहू मुगध गहेलड़ी, प्रेम न लाजूं मारि।।36।।
हौं बिरहा की लाकड़ी, समझि समझि धूंधाउँ।
छूटि पड़ौं यों बिरह तें, जे सारीही जलि जाउँ137।।

कबीर तन मन यों जल्या, बिरह अगनि सूँ लागि।
मृतक पीड़ न जाँणई, जाँणैगि यहूँ आगि।।38।।
बिरह जलाई मैं जलौं, जलती जल हरि जाउँ।
मो देख्याँ जल हरि जलै, संतौं कहीं बुझाउँ।।39।।
परबति परबति में फिर्या, नैन गंवाये रोइ।
सो बूटी पाऊँ नहीं, जानें जीवनि होइ।।40।।
फाड़ि फुटोला धज करौं, कमललड़ी पहिराउँ।
जिहि जिहिं भेषा हरि मिलें, सोइ सोइ भेष कराउँ141।।
नैन हमारे जलि गये, छिन छिन लोडै तुझ।
नां तूं मिलै न मैं खुसी, ऐसी बेदन मुझ।।42।।
भेला पाया श्रम सों, भौसागर के माँह।
जो छाँडौ तौ डूबिहौ, गहौं त डसिये बाँह।।43।।
रैणा दूर बिछोहिया, रह रे संषम झूरि।
देवलि देवलि धाहड़ी, देखी ऊगै सूरि।।44।।
सुखिया सब संसार है, खाये अरु सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागे अरु रोवै।।45।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहे डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' खंड से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों को 59 अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'बिरह को अंग' साखी का तीसरा अंग है, जिसमें कुल 46 दोहे संकलित हैं। इन साखियों में कबीर साहब जी ने मूल तत्व से विरही आत्मा की वियोगावस्था की मार्मिक दशा का वर्णन किया है। संत कबीर साहब जी ने इन साखियों में आत्मा की तड़प की तुलना एक बिरहणी के वियोग से की है।

दोहा सं. 1

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि बिरहणी आत्मा अपने प्रियतम को प्राप्त करने के लिए उसी प्रकार रोती रहती है जिस प्रकार क्रौंच नामक पक्षी अपने बच्चों के बिछुड़ने पर रोता है। बिरहिणी आत्मा के हृदय में विरहाग्नि प्रज्ज्वलित हो उठी है और उस विरह–वेदना के समूह से वह ज्वाला और भी तीव्र हो गई है।

दोहा सं. 3

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि चकवी रात्रि में चकवे से बिछुड़ने पर पुनः सुबह होने पर मिल जाती है, उसका संयोग प्राप्त कर लेती है परंतु जो व्यक्ति राम से बिछुड़ जाते है, वे न तो दिन में ही और न रात में परमात्मा से मिल पाते

हैं, क्योंकि जीव सांसारिक प्रपंचों में अर्थात मोहपाश के बधन में बंध जाता है। परमात्मा से विलग हो जाता है। अतः इस तरह उसका मिलन संभव नहीं है।

दोहा सं. 7

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि है प्रभु! बिरहन आत्मा इतनी क्षीण हो गई है कि वह आपके दर्शन प्राप्त करने के लिए उठती है और वियोगावस्था में अत्यधिक कमजोर होने के कारण उठकर गिर पड़ती है। अतः हे भगवन ! यदि आपने मरने के पश्चात दर्शन दिए भी तो वे दर्शन किस काम के? अर्थात उन दर्शनों का कोई फायदा नहीं, उनसे कोई लाभ नहीं होने वाला। (तुलनीय–तृषित बारि बिनु जो तनु त्यागा। मुए करइ का सुधा तड़ागा।–रामचरितमानस)

दोहा सं. 12

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि विरहिणी कहती है कि अब यह अवस्था मेरे लिए असहनीय है अब इस वियोग के कारण मैं अपने शरीर को जलाकर उसकी राख से स्याही बनाऊं और हड्डियों की कलम बनाकर उनसे राम का नाम लिखू और राम–नाम लिखकर उसे उनके पास भेजूं ताकि उन्हें यह पता लगे कि विरहिणी आपके वियोग में तड़प रही है, तब जाकर हो सकता है कि वे मुझे दर्शन दे दें। दोहा सं. 14

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि विरह की पीड़ा सदैव कष्टदायी होती है, दुख पहुंचाने वाली होती है। वह इतनी कसकपूर्ण होती है कि लाखों उपचार करने पर भी वह वेदना दूर नहीं होती लेकिन प्रेम की पीड़ा तो हृदय में पूरी तरह से समा गई है अर्थात उसने कलेजे को पूर्ण रूप से आच्छादित कर लिया है। कहने का भाव यह है कि जब साधक साधना करते–करते अनेक कष्टों को सहन करता है लेकिन जब उसकी (परमात्मा की) झलक उसे मिल जाती है तो वह उसके हृदय में समा जाता है, इस प्रकार वह अनूठे आह्लाद से ओत–प्रोत हो जाता है और आनंदमग्न होकर उसी में लीन रहता है।

दोहा सं. 22

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं की विरह को बुरा नहीं कहना चाहिए क्योंकि विरह ही श्रेष्ठ है वह राजा के समान है। जिसके हृदय में विरह का संचार नहीं होता, विरह उत्पन्न नहीं होता वह सदैव श्मशान के समान होता है अर्थात निर्जीव है, प्रेम रहित है। यहां कबीर साहब जी यह कहना चाहते हैं कि जिस मनुष्य के अंदर विरह या वियोग का भाव नहीं है, वह लगभग निर्जीव है। किसी भी सजीव आत्मा का यह तो प्राथमिक गुण है।

दोहा सं. 25

व्याख्या

कबीर साहब जी जीवात्मा के माध्यम से कहते हैं कि परमात्मा के वियोग के कारण मेरी आंखों ने झरने का रूप धारण कर लिया है अर्थात परमात्मा के वियोग में दिन–रात रोती रहती हूं और पपीहे की तरह 'पिउ–पिउ' की रट लगाती रहती हूं। हे प्रियतम! आप मुझसे कब मिलोगे।

दोहा सं. 30

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि इस संसार में किसी भी व्यक्ति ने प्रियतम को हंस–हंसकर प्राप्त नहीं किया। कहने का तात्पर्य यह है कि सांसारिक आनंद लेते हुए उस प्रियतम रूपी परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती, क्योंकि जिसने भी इसको प्राप्त किया है तो उसने रो–रोकर ही प्राप्त किया है अर्थात उसने विरह की तीव्रानुभूति होने पर ही उस सार तत्व को पाया है। जो हंसकर परमात्मा को प्राप्त करता है अर्थात सांसारिक विषय–वासनाओं द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति जिसे हो जाए तो वह कभी भी दुहागिन (अभागिन या दुर्भाग्य वाली) नहीं हो सकती, सदैव सुहागिन ही रहेगी। अतः इस पद्धति से सभी को ब्रह्म का सान्निध्य प्राप्त हो जाए। परंतु इसके लिए तो साधना के कष्ट से परिपूर्ण मार्ग को पार करना पड़ेगा।

दोहा सं. 32

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते है कि साधक पिता के लिए प्रिय पुत्र के समान है और वह परमात्मा रूपी पिता को प्राप्त करने के लिए उसके पीछे–पीछे दौड़ता है, तब परम तत्व रूपी परमात्मा साधक के हाथ में मिठाई देकर चला जाता है, जिसके कारण वह स्वयं को भुला देता है। कहने का आशय यह है कि परम तत्व रूपी परमात्मा की साधना करते समय अविद्या (माया) अनेक प्रकार के व्यवधान उत्पन्न करती है, जिससे साधक माया की ओर आकर्षित होकर भक्ति–भावना को त्याग देता है और माया के बंधनों में बंध जाता है, उनमें ही संलिप्त हो जाता है।

दोहा सं. 35

व्याख्या

कबीर साहब जी जीवात्मा के माध्यम से कहते हैं कि प्रियतम रूपी परमात्मा की राह देखते–देखते मेरा दिन बीत गया और रात भी इसी तरह व्यतीत हो गई इस तरह दिन–रात व्यतीत होने पर भी विरहिणी आत्मा को प्रियतम रूपी परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो रही है। परमात्मा की प्राप्ति न होने के कारण उसके प्राण तड़प रहे हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि तत्व रूपी परमात्मा के वियोग में जीवात्मा बेचैन है, लाचार है उसका हृदय वेदना से छटपटा रहा है।

दोहा सं. 37

व्याख्या

कबीर साहब जी जीवात्मा को संबोधित करते हुए कहते हैं कि यदि अन्य आत्माएं वास्तव में विरहिणी थीं तो आज तक जीवित क्यों रही? अर्थात परमात्मा के वियोग में अपने शरीर का त्याग क्यों नहीं कर दिया, अब तुम्हारा जीने का औचित्य ही क्या है? तू अपने प्रियतम के साथ जल क्यों नहीं गई अर्थात तुम्हें अपने प्रियतम के साथ जलकर सती हो जाना चाहिए था। अतः हे शर्मीली, हठीली मुग्धा नायिका अब बस करो और अधिक बातें मत बनाओ क्योंकि इस प्रकार की बातें करके तू प्रेम को भी लज्जित कर रही है।

दोहा सं. 38

व्याख्या–

जीवात्मा कहती है कि मैं अपने प्रियतम रूपी परमात्मा के विरह में लकड़ी के समान जल रही हूं। उस लकड़ी में

रह–रह कर अग्नि प्रज्ज्वलित हो रही है। नमीयुक्त होने के कारण वह लकड़ी धीरे–धीरे जल रही है जिससे पर्याप्त मात्रा में धुंआ निकल रहा है। वह परमात्मा से कातर निवेदन करती हुई कहती है कि हे प्रभु! यदि मैं आपके विरह में पूर्णरूप से जल जाऊं तो विरह के इस असहनीय दुख से मुझे छुटकारा मिल सकता है, अन्यथा मैं विरह–वेदना से इसी तरह जलती रहूंगी। यहां आत्मा की नमी का तात्पर्य मनुष्यात्मा में उपस्थित विभिन्न प्रकार की काम–वासनाओं, लिप्साओं तथा मोह–माया से है।

दोहा सं. 40

व्याख्या–

कबीर साहब जी जीवात्मा के माध्यम से कहते हैं कि जीवात्मा को विरह ने पूर्णरूप से जला दिया है। अपनी इस अवस्था के शमन के लिए वह तालाब के पास जाती है तो तालाब भी विरह–ज्वाला को देखकर स्वयं जलने लगता है। ऐसी अवस्था में जीवात्मा पूछती है कि हे संतो! मैं अपनी इस विरहाग्नि को कहां शांत करूं? कहने का तात्पर्य यह है कि मैं परमात्मा की विरहाग्नि से संतप्त हूं, इसे बुझाने के लिए मुझे कोई उपयुक्त स्थान नहीं मिल रहा है। अतः मैं परमात्मा के विरह में सतत रूप से जल रही हूं।

दोहा सं. 46

व्याख्या–

कबीर साहब जी कहते हैं कि इस संसार में सभी प्राणी सुखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करते हैं। वे चिंतारहित होकर खाते–पीते और चैन की नींद सोते हैं, लेकिन एक कबीर साहब है जो दुखी आत्मा है, जो परमात्मा के विरह में रात भर जागता–रोता रहता है। कहने का तात्पर्य यह है कि सामान्य प्राणी तो सांसारिक आकर्षणों में मग्न रहता है और आनंदपूर्वक जीवन व्यतीत करता है। लेकिन एक सच्चा साधक परमात्मा की प्राप्ति के लिए निरंतर रात–दिन साधना करता रहता है, विरहाग्नि में जलता रहता है। उसके दर्शन न होने पर रात भर जागकर रोता रहता है।

1.4 ग्यान बिरह कौ अंग

दीपक पावक आंणिया, तेल भी आंण्या संग।

तीन्यूं मिलि करि जोइया, (तब) उड़ि उड़ि पड़ें पतंग।।1।।

मार्या है जे मरेगा, बिन सर थोथी भालि।

पङ्या पुकारे बिछ तरि, आजि मरै के काल्हि।।2।।

हिरदा भीतरि दौ बलै, धूवां प्रगट न होइ।

जाके लागी सो लखे, के जिहि लाई सोइ।।3।।

झल उठा झोली जली, खपरा फूटिम फूटि।

जोगी था सो रमि गया, आसणि रही बिभूत।।4।।

अगनि जू लागि नीर में, कंदू जलिया झारि।

उतर दषिण के पंडिता, रहे विचारि बिचारि।।5।।

दौं लागी साइर जल्या, पंषी बैठे आइ।

दाधी देह न पालवै, सतगुर गया लगाइ।।6।।

गुर दाधा चेल्या जल्या, बिरहा लागी आगि।

तिणका बपुड़ा ऊबर्या, गलि पूरे के लागि7।।

आहेड़ी दो लाइया, मिरग पुकारै रोइ।

जा बन में क्रीड़ा करी, दाहत है बन सोइ।।8।।

पाणी माहे प्रजली, भई अप्रबल आगि।

बहती सलिता रहि गई, मेछ रहे जल त्यागि।।9।।

समंदर लागी आगि, नदियां जलि कोइला भई।

देखि कबीरा जागि, मंछी रूषां चढ़ि गई।।10।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहे डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' खंड से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों को 59 अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'ग्यान बिरह कौ अंग' साखी का चौथा अंग है, जिसमें कुल 10 दोहे संकलित हैं। इन साखियों में कबीर साहब जी ने परम तत्व के बारे में ज्ञान हो जाने के ऊपर प्रकाश डाला है। कबीर साहब जी के अनुसार एक बिरही आत्मा तब तक तडपती रहती है जब तक कि उसे यह ज्ञान नहीं हो जाता है कि वह मूल तत्व का ही एक अंश है और अपने मूल तत्व की पुनः प्राप्ति ही उसे सांसारिक आवागमन से मुक्ति दिलाने के लिए एक मात्र विकल्प है।

दोहा सं. 1

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि जीवात्मा रूपी दीपक में ज्ञान की ज्योति जलाने के लिए सद्गुरु ने उसमें स्नेह रूपी तेल डाल दिया है। कहने का तात्पर्य है कि सद्गुरु सदुपदेश देकर साधक–शिष्य को सन्मार्ग की ओर अग्रसर करके उसमें स्नेह रूपी तेल डालकर परमात्मा की ओर उन्मुख कर दिया है जिससे उसके हृदय में परमात्मा के प्रति प्रेम की ज्वाला उत्पन्न हो गई है। इस तरह आत्मा, ज्ञान और स्नेह तीनों मिलकर प्रदीप्त होने पर विषय–वासनाओं रूपी पतंगे उड़–उड़ कर उस अग्नि में पड़ कर नष्ट हो गए अर्थात विषय–वासनाएं समाप्त हो गईं और साधक का चित्त पवित्र, शुद्ध और निर्मल होकर भगवान की भक्ति में लग गया।

दोहा सं. 7

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि सद्गुरु ने अनुकंपापूर्वक अपने शिष्य को सन्मार्ग की ओर उन्मुख किया तो गुरु द्वारा उत्पन्न की गई प्रेमाग्नि से साधक शिष्य जल गया। कहने का अभिप्राय है कि परमात्मा के प्रति प्रेम की ज्वाला उसके हृदय में लग गईं इस लौ के उत्पन्न होने पर साधक उसके साक्षात्कार के लिए छटपटाने लगता है, अब विरहाग्नि उसे सतत सालती रहती है, वह तिल–तिल करके जलता रहता है। लेकिन यथाशीघ्र ज्ञानोपलब्धि होने पर तृण–तुल्य जीव विरहाग्नि से ऊपर उठ जाता है, और पूर्ण ब्रह्म के साथ लग जाता है। कहने का तात्पर्य है कि जीवात्मा का परमात्मा से साक्षात्कार हो जाता है, वह पूर्ण रूप से पूर्ण ब्रह्म में विलीन हो जाता है।

दोहा सं. 10

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि संसार रूपी समुद्र में ज्ञान की आग लग गई है और विषय–वासनाएं अर्थात सांसारिक आकर्षणों की नदियां जल कर कोयले के समान हो गई हैं अर्थात ज्ञान की उत्पत्ति होने पर विषय–वासनाएं तिरोहित हो गई हैं। जिसके फलस्वरूप मछली रूपी जीवात्मा परमात्मा को प्राप्त करने में सफल हो गई है। अतः हे कबीर! तू भी इस स्थिति को देखकर चैतन्य हो जा और साधना के बल पर परमात्मा की प्राप्ति का मार्ग–प्रशस्त कर ताकि मोक्ष की प्राप्ति की कामना पूरी हो सके।

1.5 परचा कौ अंग

कबीर तेज अनंत का, मानी ऊगी सूरज सेणि।
पति संगि जागी सुंदरी, कौतिग दीठा तेणि।।1।।
कोतिग दीठा देह बिन, मसि बिना उजास।
साहिब सेवा मांहि है, बेपरवाही दास।।2।।
पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान।
कहिबे कू सोभा नहीं, देख्याही परवान।।3।।
अगम अगोचर गमि नहीं, तहां जगमगै जोति।
जहाँ कबीरा बंदिगी, 'तहां' पाप पुन्य नहीं छोति।।4।।
हदे छाडि बेहदि गया, हुवा निरंतर बास।
कंवल ज फूल्या फूल बिन, को निरषै निज दास।।5।।
कबीर मन मधुकर भया, रह्या निरंतर बास।
कंवल ज फूल्या जलह बिन, को देखै निज दास।।6।।
अंतर कंवल प्रकासिया, ब्रह्म बास तहां होइ।
मन भवरा तहां लुबधिया, जाणैगा जन कोइ7।।
सायर नाहीं सीप बिन, स्वाति बूंद भी नाहिं।
कबीर मोती नीपजै, सुन्नि सिषर गढ़ माँहिं।।8।।
घट माँहे औघट लह्या, औघट माँहैं घाट।
कहि कबीर परचा भया, गुरु दिखाई बाट।।9।।
सूर समांणो चंद में, दहूँ किया घर एक।
मनका च्यंता तब भया, कछू पूरबला लेख०।।10।।
हद छाड़ि बेहद गया, किया सुन्नि असनान।
मुनि जन महल न पावई, तहाँ किया विश्राम।11।।

देखौ कर्म कबीर का, कछु पूरब जनम का लेख।
जाका महल न मुनि लहैं, सो दोसत किया अलेख।।12।।
पिंजर प्रेमे प्रकासिया, जाग्या जोग अनंत।
संसा खूटा सुख भया, मिल्या पियारा कंत13।।
प्यंजर प्रेम प्रकासिया, अंतरि भया उजास।
मुख कसतूरी महमहीं, बांणीं फूटी बास।।14।।
मन लागा उन मन्न सों, गगने पहुँचा जाइ।
चंदबिहूणां, चाँदिणाँ, तहाँ अलख निरंजन राइ।।15।।
मन लागा उन मन सों, उन मन मनहि बिलग।
लूँण बिलगा पाणियाँ, पाँणी लूंणा बिलग।।16।।
पाणी ही तें हिम भया, हिम है गया बिलाइ।
जो कुछ था सोई भया, अब कछू कह्या न जाइ।।17।।
भली भई जु भै पड्या, गई दशा सब भूलि।
पाला गलि पाँणी भया, ढुलि मिलिया उस कूलि।।18।।
चौहटै च्यंतामणि चढ़ी, हाडी मारत हाथि।
मीरा मुझसूँ मिहर करि, इब मिलौं न काहू साथि।।19।।
पंषि उडाणी गगन कुँ, प्यंड रह्या परदेस।
पाणी पीया चंच बिन, भूलि गया यहु देस।।20।।
पंषि उड़ानी गगन कुँ, उड़ी चढ़ी असमान।
जिहिं सर मण्डल भेदिया, सो सर लागा कान।।21।।
सुरति समांणो निरति मैं, निरति रही निरधार।
सुरति निरति परचा भया, तब खूले स्यंभ दुवार।।22।।
सुरति समाणो निरति मैं, अजपा माँहै जाप।
लेख समांणां अलेख मैं, यूँ आपा माँहै आप।।23।।
आया था संसार में, देषण की बहु रूप।
कहै कबीरा संत ही, पड़ि गया नजरि अनूप।।24।।
अंक भरे भरि भेटिया, मन मैं नाहीं धीर।
कहै कबीर ते क्यूँ मिलें, जब लग दोइ सरीर।।25।।

सचु पाया सुख ऊपना, अरु दिल दरिया पूरि।
सकल पाप सहजै गये, जब साँई मिल्या हजूरि।।26।।
धरती गगन पवन नहीं होता, नहीं तोया, नहीं तारा।।
तब हरि हरि के जन होते, कहै कबीर बिचारा।।27।।
जा दिन कृतमना हुता, होता हट न पट।
हुता कबीरा राम जन, जिनि देखै औघट घट।।28।।
थिति पाई मन थिर भया, सतगुर करी सहाइ।
अनिन कथा तनि आचरी, हिरदै त्रिभुवन राइ।।29।।
हरि संगति सीतल भया, मिटा मोह की ताप।
निस बासुरि सुख निध्य लगा, जब अंतरि प्रकद्या आप।।30।।
तन भीतरि मन मानियाँ, बाहरि कहा न जाइ।
ज्वाला तै फिरि जल भया, बुझी बलंती लाइ।।31।।
तप पाया तन बीसर्या, जब मुनि धरिया ध्यान।
तपनि गई सीतल भया, जब सुनि किया असनान।।32।।
जिनि पाया तिनि सू गह्या गया, रसना लागी स्वादि।
रतन निराला पाईया, जगत ढंढाल्या बादि।।33।।
कबीर दिल स्याबति भया, पाया फल सप्रथ्य।
सायर माँहि ढंढोलता, हीरै पड़ि गया हथ्थ।।34।।
जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाँहि।
सब अँधियारा मिटि गया, जब दीपक देख्या माँहि।।35।।
जा कारणि मैं ढूंढता, सनमुख मिलिया आइ।
धन मैली पिव ऊजला, लागि न साकौं पाइ।।36।।
जा कारणि मैं जाइ था, सोई पाई ठौर।
सोई फिर आपण भया, जावू कहता और।।37।।
कबीर देख्या एक अंग, महिमा कही न जाइ।
तेज पुंज पारस धणों, नैनूं रहा समाइ।।38।।
मानसरोवर सुभर जल, हंसा केलि कराहिं।
मुकताहल मुकता चुनें, अब उड़ि अनत न जाहि।39।।
गगन गरिजि अमृत चवै, कदली कंवल प्रकास।
तहाँ कबीरा बंदिगी, के कोई निज दास।।40।।

नींव बिहणा देहरा, देह बिहूँणा देव।
कबीर तहाँ बिलंबिया करे अलप की सेव।।41।।
देवल माँ है देहरी, तिल जे हैं बिसतार।
माँहैं पाती माँहिं जल, माहे पुजणहार।।42।।
कबीर कंवल प्रकासिया, ऊग्या निर्मल सूर।
निस अँधियारी मिटि गई, बाजै अनहद तूर।।43।।
सच पाया सुख ऊपना, अरु दिल दरिया पूरि।
अनहद बाजै नीझर झरै, उपजै ब्रह्म गियान।
अविगति अंतरि प्रगटै, लागै प्रेम धियान।।44।।
आकासै मुखि औंधा कुवाँ, पाताले पनिहारि।
ताका पाँणी को हंसा पीवै, बिरला आदि बिचारि।।45।।
सिव सकती विसि कौंण जु जोवै, पछिम दिस उठे धूरि।
जल मैं स्यंघ जु घर करै, मछली चदै खजूरि।।46।।
अमृत बरसै हीरा निपजै, घंटा पड़े टकसाल।
कबीर जुलाहा भया पारबू, अगभै उतर्या पार।।47।।
ममिता मेरा क्या करै, प्रेम उघाडी पौलि।
दरसन भया वयाल का, सूल भई सख सौडि।।48।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहे डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' खंड से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों को 59 अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'परचा कौ अंग' साखी का पांचवां अंग है, जिसमें कुल 48 दोहे संकलित हैं। इनमें आत्मा और परमात्मा के साक्षात्कार का उल्लेख किया गया है। अगम्य, अगोचर, अनादि ब्रह्म का परिचय होने पर हर तरह का अंधकार नष्ट हो जाता है।

दोहा सं. 1

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि उस अपरम्पार तत्व परमात्मा के तेज का आदि–अंत नहीं है, उसकी तेजस्विता ऐसी प्रतीत होती है मानो सूर्यों की श्रेणी उत्पन्न हो गई है। आत्मा रूपी पत्नी ने परमात्मा रूपी पति के साथ जाग कर इस आश्चर्यमय दृश्य को देखा। कहने का अभिप्राय है कि जीवात्मा का सद्गुरु द्वारा मार्गदर्शन करने पर उसे ज्ञान–प्राप्ति हुई, जिसके फलस्वरूप उसका ब्रह्म से साक्षात्कार अर्थात परिचय प्राप्त हुआ।

दोहा सं. 6

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि मेरा मन भंवरा बन गया है और वह निरंतर उस कमल पर मंडराता रहता है अर्थात

उसी में लीन हो गया है जिससे वह उत्पन्न हुआ है। ऐसे अनुपम तत्व को कौन देख सकता है? कहने का तात्पर्य है कि सच्चा साधक ही उसके दर्शन कर सकता और उससे प्राप्त होने वाले आनंद की अनुभूति कर सकता है। इस प्रकार साधक का मन रूपी भंवरा सदैव कमल के सम्पुट में रहता है, उसी में निवास करने लगता है।

दोहा सं. 8

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि न तो सागर है और न सीपी ही तथा स्वाति नक्षत्र की बूंद भी नहीं है जो मोती उत्पन्न करने का माध्यम है, उपादान कारण है। इन सबकी अनुपस्थिति में शून्य शिखर में मोतियों की उत्पत्ति होती है। कहने का तात्पर्य है कि जब साधक निरंतर साधना करता है तो साधना करते–करते वह स्वयं ब्रह्ममय हो जाता है और ब्रह्मांध्र से एक–एक बूंद करके अमृतस्राव होता रहता है तब उसके हृदय–सागर में प्रत्येक बूंद मोती बन जाती है अर्थात उसे अपार आनन्दानुभूति होती रहती है।

दोहा सं. 13

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि सद्गुरु द्वारा मार्ग दर्शन करने पर मेरे शरीर अर्थात हृदय में परमात्मा के प्रति प्रेम प्रकाशित हो गया तदुपरांत परमात्मा के प्रति योग–साधना जागृत हो गई अर्थात साधक अब ब्रह्म से साक्षात्कार करने के लिए लालायित हो गया और वह निरंतर योग (ध्यान) की ओर प्रवृत्त होने लगा। योग व ध्यान की ओर अग्रसर होने पर उसके सभी संशय समाप्त हो गए अर्थात उसके भ्रमादि विकार नष्ट हो गए एवं प्रिय रूपी परमात्मा के मिलने पर उसे असीम सुख की अनुभूति हुई अर्थात उसका परमात्मा से साक्षात्कार हो गया जिससे विषय–वासनाएं समाप्त हो गई। वह स्वच्छ, निर्मल एवं पावन हो गया।

दोहा सं. 21

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि सद्गुरु ने मुझे सदुपदेश रूपी बाण दे दिया है जिसने शून्य एवं मूलाधार के बीच के स्थान को भेद दिया है। जिसमें षट्चक्र इत्यादि शामिल होते हैं। इस लक्ष्य को भेदकर पक्षी रूपी आत्मा शून्य ब्रह्म की ओर उड़ गईं इतना ही नहीं वह उड़ कर ब्रह्मांड में जा पहुंची जहां परमात्मा निवास करते हैं। कहने का तात्पर्य है कि आत्मा–परमात्मा में एकाकार हो गई जिसके परिणामस्वरूप उसे आवागमन के बंधन से छुटकारा मिल गया।

दोहा सं. 24

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि मेरा जन्म इस नाम–रूपात्मक संसार में इसलिए हुआ था कि मैं इसके विभिन्न रूपों को देख सकू, उनका भली–भांति उपभोग कर सकूँ, लोकिन सद्गुरु ने ऐसा सदुपदेश रूपी बाण मारा जिससे मैं भक्ति–पथ की ओर अग्रसर हुआ और संत बन गया। ऐसी स्थिति में लगातार भक्ति करते हुए, साधनारत रहते हुए मुझे उस अनुपम, अद्वितीय, अनादि परम तत्व परमात्मा के दर्शन इस विभिन्न नाम–रूपात्मक संसार में ही हो गए। कहने का तात्पर्य यह है कि साधना करते हुए इस मोह–माया युक्त संसार का प्रभाव मुझ पर नहीं पड़ा जिसके फलस्वरूप साधना के विभिन्न प्रकार के सोपानों को पार करते हुए अविनाशी ब्रह्म से मेरा साक्षात्कार हो गया, उससे परिचय हो गया।

दोहा सं. 26

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि सद्गुरु मार्ग दर्शन करने पर ही मुझे सत्य रूपी ब्रह्म की प्राप्ति हुई जिसके फलस्वरूप अनेक प्रकार के सुख उत्पन्न हुए अर्थात सुखों की प्राप्ति हुईं जिससे मेरा दिल उसी प्रकार सुखों से भर गया जिस प्रकार नदी पानी से भरी रहती है। सत्य ब्रह्म की प्राप्ति पर मेरे सभी पाप सहज रूप से नष्ट हो गए। कहने का अभिप्राय है कि जिस प्रकार नदी का पानी उसमें पड़ने वाले गंदे नाले के पानी का रूप अपने रूप में परिवर्तित कर देता है अर्थात स्वच्छ बना देता है उसी प्रकार मेरे सकल पाप सहज रूप से नष्ट हो गए।

दोहा सं. 32

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि सतत साधना द्वारा परम तत्व परमात्मा का ध्यान लगाने के पश्चात उसकी प्राप्ति पर साधक को शरीर की सुध–बुध भी नहीं रही। कहने का तात्पर्य है कि उसने मायाजनित संसार को भुला दिया और प्रभु की भक्ति के द्वारा परमात्मा से साक्षात्कार कर लिया। परमात्मा का ध्यान करते–करते उसका मन शून्य–शिखर में पहुंच कर अमृत रस का पान करने लगा जिससे विषय–विकारों की ज्वाला शांत हो गई और उसका अंतःकरण स्वच्छ, पावन एवं निर्मल व द्वादशवर्णी कंचन जैसा हो गया।

दोहा सं. 35

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि जब मेरे अंदर अहं भावना थी तब मेरा परमात्मा से परिचय नहीं हो पाया, लेकिन जब मेरा अहंकार समाप्त हो गया तब से मेरे हृदय में परमात्मा निवास करने लगे और मुझे असीम सत्ता का पूर्ण परिचय मिल गया। इस पर जब मैंने ज्ञान रूपी दीपक लेकर अपने हृदय को देखा ते मेरा समस्त अज्ञान रूपी अंधकार नष्ट हो गया। यहां 'मैं' तत्व यानी अहं की तुलना अधंकार रूपी अज्ञान से की गई है।

दोहा सं. 40

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि सद्गुरु द्वारा मार्गदर्शन करने पर मैं साधना–पथ की ओर अग्रसर हुआ जिसके फलस्वरूप शून्य रूपी गगन में अनहदनाद रूपी बादल गर्जना करने लगे जिससे अमृत की वर्षा होने लगी, तथा सुषुम्ना रूपी बदली से सहस्रदल कमल विकसित हुआ जिससे अद्वितीय प्रकाश पुंज विदीर्ण हो रहा है। साधना की इस अवस्था में पहुंच कर भगवान की भक्ति कबीर या उनका कोई दास अर्थात भक्त ही कर सकता है, दूसरा कोई नहीं। कहने का तात्पर्य है कि साधना–पथ अत्यंत दुष्कर है, इस पर तो कोई बिरला ही चलकर परम तत्व परमात्मा के दर्शन कर सकता है।

दोहा सं. 44

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि सद्गुरु द्वारा मार्गदर्शन करने पर जब साधक परम तत्व परमात्मा की प्राप्ति के लिए प्रेम–पूर्वक अपना ध्यान लगाता है तब अगम्य ब्रह्म उसके हृदय में प्रकट हो जाता है और उसे ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। कहने का तात्पर्य है कि साधक योग–ध्यान द्वारा परमात्मा से साक्षात्कार कर लेता है। तदुपरांत परिचय के

बाद उसे अनहदनाद सुनाई देने लगता है और शून्य–गगन से अमृत वर्षा होने लगती है। इस अमृत–वर्षा का पान करके साधक अजर–अमर हो जाता है, उसे आवागमन के बंधनों से मुक्ति मिल जाती है।

दोहा सं. 48

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि परम तत्व परमात्मा के दर्शन होने के उपरांत सांसारिक मोह–मायादि मेरा क्या बिगाड़ सकते हैं! कहने का आशय है कि उनका मुझ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि सद्‌गुरु के सदुपदेश के कारण उस परम तत्व से प्रेमपूर्वक ध्यान लगाने, साधना करने के बाद अब उसका कोई रहस्य मुझसे छिपा नहीं है। उसका पूर्ण परिचय मुझे मिल गया है। परिचय के बाद सांसारिक विषय–वासना रूपी कांटे भक्ति का रूप धारण करके शरद ऋतु में सुख प्रदान करने वाली रजाई बन गए। कहने का तात्पर्य है कि परमात्मा प्राप्ति के बाद सभी पाप पुण्य में परिवर्तित हो गए और वे अखंड आनंद प्रदान करने वाले बन गए।

1.6 निहकर्मी पतिब्रता कौ अंग

कबीर प्रीतडी तौ तुझ सौं, बहु गुणियाले कंत।
जे हँसि बोलौं और सौं, तौं नील रँगाउँ दंत।।1।।

नैना अंतरि आव तूं, ज्यूँ हौं नैन झंपेउँ।
नाँ हौं देखौं और कू, नाँ तुझ देखन देउँ।।2।।

मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा।
तेरा तझको सौंपता, क्या लागै है मेरा।।3।।

कबीर रेख स्यंदूर की, काजल दिया न जाइ।
नैनूं रमइया रमि रह्या, दूजा कहाँ समाइ।।4।।

कबीर सीप समंद की, रटै पियास पियास।
संमदहि तिणका बरि गिणै, स्वाति बूँद की आस।।5।।

कबीर सुख को जाइ था, आगै आया दुख।
जाहि सुख घरि आपणै, हम जाण अरु दुख।।6।।

दो जग तो हम अंगिया, यह डर नाहीं मुझ।
भिस्त न मेरे चाहिये, बाझ पियारे तुझ।।7।।

जे वो एके न जाँणियाँ, तो जाण्याँ सब जाँण।
जो वो एक न जाँणियाँ, तो सबहीं जाँण अजाँण।।8।।

कबीर एक न जाँणियाँ, तो बहु जाँण्याँ क्या होइ।
एक तैं सब होत है, सब तैं एक न होइ।।9।।

जब लगि भगति सकामता, तब लग निर्फल सेव।

कहै कबीर वै क्यूं मिलैं, निहकामी निज देव।।10।।

आसा एक जू राम की, दूजी आस निरास।

पाँणी माहै घर करें, ते भी मरै पियास।।11।।

जे मन लागै एक सूँ, तो निरबाल्या जाइ।

तूरा दुइ मुखि बाजणां, न्याइ तमाचे खाइ।।12।।

कबीर कलिजुग आइ करि, कीये बहुतज मीत।

जिन दिल बँधी एक तूं, ते सुखु सोवै नचीत।।13।।

कबीर कुत्ता राम का, मुतिया मेरा नाउँ।

गलै राम की जेवडी, जित खैचे तित जाउँ।।14।।

तो तो करै त बाहुड़ों, दुरि दुरि करै तो जाउँ।

ज्यूँ हरि राखें त्यूँ रहौं, जो देवै सो खाउँ।।15।।

मन प्रतीति न प्रेम रस, नां इस तन मैं ढंग।

क्या जाणौं उस पवि सू, कैसे रहसी संग।।16।।

उस संम्रथ का दास हौं, कदे न होइ अकाज।

पतिव्रता नाँगी रहै, तो उसही पुरिस को लाज।।17।।

धरि परमेसुर पाहुणा, सुणों सनेही दास।

षट रस भोजन भगति करि, न्यूँ कदे न छाडै पास।।18।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहा डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' खंड से लिया गया है। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों को 59 अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'निहकर्मी पतिव्रता कौ अंग' साखी का छठा अंग है, जिसमें कुल 18 दोहे संकलित हैं। इनमें कबीर साहब जी ने आत्मा को पत्नी तथा परमात्मा को पति के रूप चित्रित किया है। इन साखियों में कबीर साहब जी ने आत्मा को पति के वियोग में तड़पती पत्नी बताया है जो सदैव पती से मिलने तथा उसके दर्शन करने के लिए व्याकुल रहती है।

दोहा सं. 2

व्याख्या

कबीर साहब जी जीवात्मा के माध्यम से प्रियतम रूपी परमात्मा को संबोधित करते हुए कहते हैं कि हे प्रियतम! आप मेरे नेत्रों में आकर बस जाओ, उनमें समाहित हो जाओ। तुम मेरे नेत्रों में जैसे ही आओगे मैं तुम्हें अपनी आंखों में बंद कर लूंगी। अपनी आंखों में बंद करने के बाद मैं न तो तुम्हें किसी अन्य की ओर देखने दूंगी और न ही मैं किसी अन्य की तरफ देखूगी अर्थात जीवात्मा परमात्मा के साथ तादात्म्य स्थापित करके उसमें एकाकार होना चाहती है। कबीर साहब जी यह कहना चाहते हैं कि परमात्मा में मिलने के बाद आत्मा को किसी ओर की तरफ देखने की आवश्यकता ही नहीं है।

दोहा सं. 11

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि मानव को परम तत्व से ही कुछ आशा करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त किसी अन्य से की गई आशाएं निराशा में बदल जाती हैं। कहने का तात्पर्य है कि परमब्रह्म ही सब प्रकार की इच्छाओं को पूरा करने वाला है, वह कल्पवृक्ष के समान है, उसके सिवाय किसी अन्य देवता से की गई आशाएं निरर्थक हैं। वे मगमरीचिका के समान व्यक्ति को पथभ्रष्ट करती हैं। कबीर साहब जी कहते हैं कि जिसका निवास जल में ही है फिर भी वह प्यासा मरता है। कहने का आशय है कि जीव और ब्रह्म में भेद नहीं है, वह प्रत्येक व्यक्ति के घर–घर में निवास करता है, संसार के कण–कण में विद्यमान है लेकिन जीव माया के वशीभूत होकर उसे नहीं देख पाता, इसी कारण वह अतृप्त है, प्यासा है। अन्य देवताओं से आशा करता है।

दोहा सं. 17

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि मैं उस समर्थ परमात्मा का दास हूं जिससे कभी किसी भी प्रकार की हानि नहीं होती। कहने का तात्पर्य है कि परमात्मा सर्वज्ञ, सर्वज्ञाता और सर्वोपरि है। उसकी भक्ति, मार्ग प्रशस्त करने वाली है, वह अनिष्टकारी नहीं अपितु मंगलकारी है और यदि उस पुरुष (ब्रह्म) की पतिव्रता स्त्री (आत्मा) नग्न रहती है तो यह उसके लिए लज्जा का विषय है, क्योंकि उसकी इस दयनीय अवस्था को देखकर कहा जाएगा कि भगवान की वधू नग्न है अर्थात इसके लिए परमात्मा को ही लज्जा की अनुभूति होगी किसी और को नहीं।

1.7 चितावणी कौ अंग

कबीर नौबति आपणी, दिन दस लेहु बजाइ।

ए पुर पटन ए गली, बहुरि न देखै आइ।।1।।

जिनके नौबति बाजती, मैंगल बँधते बारि।

एके हरि के नाँव बिन, गए जन्म सब हारि।।2।।

ढोल दमामा दड़बड़ी, सहनाई संगि भेरि।

औसर चल्या बजाइ करि, है कोइ राखै फेरि।।3।।

सातो सबद जु बाजते, घरि घरि होते राग।

ते मंदिर खाली पड़े, बैसण लागे काग।।4।।

कबीर थोड़ा जीवणा, माड़े बहुत मँडाण।

सबही ऊभा मेल्हि गया, राव रंक सुलितान।।5।।

इक दिन ऐसा होइगा, सब तूं पड़े बिछोइ।।

राजा राणा छत्रपति, सावधान किन होइ।।6।।

कबीर पटल कारिवाँ, पंच चोर दस द्वार।

जन राँणौं गढ़ भेलिसी, सुमिरि लै करतार।।।7।।

कबीर कहा गरबियौ, इस जीवन की आस।
टेसू फूले दिवस चारि, खंखर भये पलास।।8।।
कबीर कहा गरबियो, देही देखि सुरंग।
बिछड़ियाँ मिलिनौ नहीं, ज्यूँ काँचली भुवंग।।9।।
कबीर कहा गरिबियो, ऊँचे देखि अवास।
काल्हि पयूँ भ्वै लेटणा, ऊपरि जामैं घास।।10।।
कबीर कहा गरबियो, चाँम लपेटे हड।
हैबर ऊपरि छत्रा सिरि, ते भी देबा खड।।11।।
कबीर कहा गरबियो, काल गहै कर केस।
नां जाँणों कहाँ मारिसी, के घरि के परदेस।।12।।
यहु ऐसा संसार है, जैसा सै बल फुल।
दिन दस के व्योहार को, झूठे रंगि न भूल।।13।।
जाँभण मरण बिचारि करि, कूडे काँम निहारि।
जिनि पंथू तुझ चालणां, सोई पंथ सँवारि।।14।।
बिन रखवाले बहिरा, चिड़ियै खाया खेत।
आधा प्रधा ऊबरै, चेति के तो चेति।।15।।
हाड़ जलै ज्यूँ लाकड़ी, केस जलै ज्यूँ घास।
सब तन जलता देखि करि, भया कबीर उदास।।16।।
कबीर मंदिर ढहि पड़ा, सेंट भई सैबार।
कोई मंदिर चिणि गया, मिल्या न दूजी बार।।17।।
कबीर देवल ढहि पड़ा, ईट भई सैवार।
करि चेजारा सौ प्रीतिड़ी, ज्यौं ढहै न दूजी बार।।18।।
कबीर मंदिर लाष का, जड़िया हीरै लालि।
दिवस चारि का पेषणां, विनस जाइगा काल्हि।।19।।
कबीर धूलि सकेलि करि, पुड़ी ज बाँधी एह।
दिवस चारि का पेषणा, अंतिषेह का षेह।।20।।
कबीर जे धंधै तौ धूलि, बिन धंधे धूलै नहीं।
ते नर बिनठे मूलि, जिनि धंधे मैं ध्याया नहीं।।21।।

कबीर सुपनै रैनि के, ऊघड़ि आयै नैन।
जीव पड्या बहु लूटि मैं, जागै तो लैण न देण।।22।।
कबीर सुपनै रैनि के, पारस जीय मैं छेक।
जे सोऊँ तो दोइ जणां, जे जागूँ तो एक।।23।।
कबीर इस संसार में, घणै मनिप मतिहींण।
राम नाम जाँणौं नहीं, आये टापी दीन।।24।।
कहा कियौ हम आइ करि, कहा करेंगे जाड़।
इत के भए न उत के, चाले मूल गँवाइ।।25।।
आया अणआया भया, जे बहुरता संसार।
पड़ा भुलावा गफिलाँ, गये कुबंधी हारि।।26।।
कबीर हरि की भगति बिन, धिगि जीमण संसार।
धूवाँ केरा धौलहर, जात न लागै वार।।27।।
जिहि हरि की चोरी करि, गये राम गुण भूलि।
ते बिंधना बागुल रचे, रहे अरध मुखि झूलि।।28।।
माटी मलणि कुंभार की, घड़ी सहै सिरि लात।
इहि औसरि चेत्या नहीं, चूका अबकी घात।।29।।
इहि औसरि चेत्या नहीं, पसु ज्यूँ पाली देह।
राम नाम जाण्या नहीं, अति पड़ी मुख षेह।।30।।
राम नाम जाण्यो नहीं, लानी मोटी षोड़ि।
काया हाँडी काठ की, ना ऊ चढ़े बहोड़ि।।31।।
राम नाम जाण्या नहीं, बात बिनंठी मूलि।
हरत इहाँ ही हारिया, परति पड़ी मुख धूलि।।32।।
राम नाम जाँण्यां नहीं, पल्यो कटक कुटुम्ब।
धंधा ही में मरि गया, बाहर हुई न बंब।।33।।
मानुष जनम दुर्लभ है, देह न बारम्बार।
तरवर थें फल झड़ि पड़ा, बहुरि न लागै डार।।34।।
कबीर हरि की भगति करि, तजि बिषिया रस चोज।
बारबार नहीं पाइए, मानुष जन्म की मौज।।35।।
कबीर यहु तन जात है, सके तो ठाहर लाइ।

के सेवा करि साध की, के गुण गोविंद के गाइ।।36।।

कबीर यह तन जात है, सके तो लेहु बहोड़ि।

नागे हाथूँ ते गए, जिनके लाख करोड़ि।।37।।

यह तनु काचा कुंभ है, चोट चहूँ दिसि खाइ।

एक राम के नाँव बिन, जदि तदि प्रलै जाइ।।38।।

यह तन काचा कुंभ है, लिया फिरै था साथि।

ढबका लागा फुटि गया, कछू न आया हाथि।।39।।

काँची कारी जिनि करै, दिन दिन बधै बियाधि।

राम कबीरै रुचि भई, याही ओषदि साधि।।40।।

कबीर अपने जीवतै, ए दोइ बातें धोइ।

लोग बड़ाई कारण, अछता मूल न खोइ।।41।।

खंभा एक गइंद वोइ, क्यूँ करि बंधिसि बारि।

मानि करै तो पीव नहीं, पीव तौ मानि निवारि।।42।।

दीन गँवाया दुनी सौं, दुनी न चाली साथि कहा

पाइ कुहाड़ा मारिया, गाफिल अपणै हाथि।।43।।

यह तन तो सब बन भया, करमा भए कुहाड़ि।

आप आप काटिहैं, कहैं कबीर विचारि।।44।।

कुल खोया कुल ऊबरै, कुल राख्यो कुल जाइ।

राम निकुल कुल भेटि लैं, सब कुल रह्या समाइ।।45।।

दुनिया के धोखे मुवा, चलै जु कुल की काँण।

तब कुल किसका लाजसी, जब ले धर्या मसाँणि।।46।।

दुनियाँ भाँडा दुख का, भरी मुँहामुह भूष।

अदया अलह राम की, कुरलै ऊँणी कूष।।47।।

जिहि जेबड़ी जग बंधिया, तूं जिनि बँधै कबीर।

हैसी आटा लूँण न्यूँ, सोना सँवाँ शरीर।।48।।

कहत सुनत जग जात है, विषै न सूझै काल।

कबीर प्यालै प्रेम के, भरि भरि पिवै रसाला।।49।।

कबीर हद के जीव सूँ, हित करि मुखाँ न बोलि

जे लागे बेहद सूँ तिन सूँ अंतर खोलि।।50।।

कबीर केवल राम की, तूं जिनि छाडै ओट।

घण अहरणि बिचि लोह ज्यूँ, घड़ी सहे सिर चोट।।50।।

कबीर केवल राम कहि, सुध गरीबी झालि।

कूड़ बड़ाई बूड़सी, भारी पड़सी काल्हि।।52।।

काया मंजन क्या करै, कपड़ा धोइम धोइ।

ऊजल हूवा न छूटिए, सुख नींदड़ी न सोह।।53।।

ऊजल कपड़ा पहरि करि, पान सुपारी खाँहि।

एके हरि का नाँव बिन, बाँधे जमपुरि जाँहि।।54।।

तेरा संगी कोइ नहीं, सब स्वारथ बँधी लोइ।

मनि परतीति न ऊपजै, जीव बेसास न होइ।।55।।

माइ बिडाणों बाप बिड़, हम भी मंझि बिड़ाह।

दरिया केरी नाव ज्यूँ, संजोगे मिलियाँह।।56।।

इत प्रधर उत घर, बड़ जण आए हाट।

करम किराणाँ बेचि करि, उठि ज लागे बाट।।57।।

नान्हाँ काती चित दे, महँगे मोलि बिकाइ।

गाहक राजा राम है, और न नेड़ा आइ।।58।।

डागल उपरि दौड़णा, सुख नींदड़ी न सोइ।

पुनै पाए द्यौहणे, ओछी ठौर न खोइ।।59।।

मैं मैं बड़ी बलाइ है, सके तो निकसी भाजि।

कब लग राखौं हे सखी, रूई पलेटी आगि।।60।।

मैं मैं मेरी जिनि करै, मेरी मूल बिनास।

मेरी पग का पैषड़ा, मेरी गल की पास।।61।।

कबीर नाव जरजरी, कूड़े खवणहार।

हलके हलके तिरि गए, बूड़े तिनि सिर भार।।62।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहे डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' खंड से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल. 809 दोहों को 59 अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'चितावणी कौ अंग' साखी का सातवां अंग है, जिसमें कुल 62 दोहे संकलित हैं। इनमें कबीर साहब जी ने संसार की नश्वरता तथा क्षणभंगुरता का सजीव चित्रण करते हुए विषय–वासनाओं का त्याग करके परमात्मा का स्मरण करने की चेतावनी दी है।

दोहा सं. 4

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि जिन मंदिरों में सातों वाद्ययंत्र (झांझ, मृदंग, शंख, शहनाई, बीन, बांसुरी और ढोल) उनके ऐश्वर्य और वैभव का उद्घोष करते थे, वहां अब केवल कौओं का बसेरा हो गया है। कहने का तात्पर्य है कि जिन स्थानों पर ऐश्वर्य का प्रत्येक साधन उपलब्ध था और सदैव आनंद छाया रहता था आज वे स्थान खाली पड़े हुए हैं और उन पर कौए बैठने लगे हैं। आशय है कि आज उनके बारंबार रंगारंग कार्यक्रम ही समाप्त नहीं हुए अपितु उनका नामोनिशान तक नहीं रहा।

दोहा सं. 13

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि यह संसार सेमर के फूल की तरह सौंदर्य से परिपूर्ण लेकिन सारहीन, तत्वहीन है। जिस प्रकार तोता सेमर की सुंदरता को देखकर उसमें चोंच मारता है, लेकिन उसे कुछ प्राप्त नहीं होता ठीक उसी प्रकार जीव को सांसारिक आकर्षण अपनी ओर खींचते हैं लेकिन अंततः उसे कुछ प्राप्त नहीं होता। यह संसार केवल दस दिन का मेला है इसलिए जीव को भूलकर भी संसार के इन मिथ्या–आकर्षणों में नहीं पड़ना चाहिए और ना ही अपनी वास्तविक स्थिति को भूलना चाहिए।

दोहा सं. 17

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि यह शरीर रूपी मंदिर ढह गया है और उसे दफनाने से (मृत्यु से) पूर्व जो सुगन्धित पदार्थ था वह दुर्गंधपूर्ण शैवाल (पानी का घास) में बदल गया। कहने का तात्पर्य है कि शरीर के अवयव रूपी ईंट शैवाल में परिणत हो गईं इस शरीर रूपी मंदिर का निर्माता अर्थात ब्रह्म इसका निर्माण करके उसे दुबारा नहीं मिला, क्योंकि उसने ऐसे सुंदर शरीर की रचना की थी।

दोहा सं. 28

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि जिस प्राणी ने भगवान के नाम के स्मरण करने से मन चुराया है और इतना ही नहीं उनके गुणों का गान करना भी भुला दिया है, उनको भगवान ने बागुल (चमगादड़) नामक पक्षी बना दिया है जो वृक्ष की शाखाओं पर नीचे की ओर मुंह करके (उल्टा) लटका रहता है।

दोहा सं. 33

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि हे जीव! तुम प्रभु–भक्ति की ओर अग्रसर नहीं हुए और सांसारिक बंधनों में फंस गए। जिसके कारण तुम अपने सेना जैसे अपने कुटुंबन पालन–पोषण करते रहे और सांसारिक उलझनों में उलझ कर संपूर्ण जीवन व्यती तथा मृत्यु के नजदीक आ पहुंचे, फिर भी तुम्हारा अहंकार कम नहीं हुआ।

दोहा सं. 37

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि हे मानव! तुम्हारा यह शरीर जा रहा है इसे बचा सकते हो तो बचाओ। कहने का तात्पर्य है कि यह जीवन प्रभु–भक्ति के बिना व्यथ ही बीता जा रहा है यदि तुम इस जन्म को पुनः प्राप्त करना चाहते हो तो सत्कर्म करके इसका सदुपयोग करो, प्रभु–भक्ति की ओर प्रवृत हो जाओ क्योंकि जिनके पास लाखों–करोड़ो की संपत्ति थी, धन–दौलत थी वे भी इस संसार से खाली हाथ चले गए। अतः तुम व्यर्थ ही माया के चक्कर में फंसकर अपने अमूल्य जीवन को नष्ट कर रहे हो।

दोहा सं. 39

व्याख्या– कबीर साहब जी कहते हैं कि मानव शरीर कच्चे घड़े की तरह है, जिसे वह सदैव साथ लिए घूमता रहता है अर्थात मानव जीवन घड़े के समान कोमल तथा अनिश्चित भविष्य वाला है। वह काल की जरा सी चोट से शीघ्र ही फूट जाएगाय फूटने पर उसमें से कुछ भी पल्ले नहीं पड़ता, कुछ भी हाथ नहीं लगेगा। कहने का तात्पर्य है कि भक्ति–रहित शरीर रूपी घर शीघ्र ही नष्ट हो जाएगा, फिर कुछ भी शेष नहीं रहेगा।

दोहा सं. 45

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि समस्त सांसारिक वैभवपूर्ण प्रलोभनों को छोड़कर परम तत्व परमात्मा को प्राप्त किया जा सकता है। यदि व्यक्ति सांसारिक विषय–वासनाओं में ही संलिप्त रहा ते परमात्मा को प्राप्त करना असंभव है। हे मानव! तू इन सांसारिक आकर्षणों से विरक्त होकर परम तत्व परमात्मा से साक्षात्कार कर क्योंकि सारा संसार उसी परम तत्व में ही समाहित है। कहने का तात्पर्य है कि मोह–मायादि सांसारिक आकर्षणों का त्याग करके ही ब्रह्म–प्राप्ति संभव है।

दोहा सं. 47

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि यह संसार रूपी बर्तन दुखों से भरा हुआ दुखों का भंडार है, इसमें भूख और अभाव पूरी तरह व्याप्त हैं और जिन व्यक्तियों पर राम की दया नहीं है वे तो हीन कोख से उत्पन्न हुए हैं। अथवा परमात्मा की दया के बिना जो बडे खजाने हैं वे भी रिक्त रहते हैं। कहने का आशय है कि राम की कृपा ही सर्वोपरि है उसी से सब कुछ होता है

दोहा सं. 50

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि हे मानव! तम्हें सांसारिक विषय वासनाओं में लिप्त से प्रेमपूर्वक बातचीत नहीं करनी चाहिए। कहने का तात्पर्य है कि उससे अंतरंग बनकर हार्दिक बातें नहीं करनी चाहिए तथा जो प्राणी ब्रह्म से प्रेम करते हैं अर्थात भगवान की भक्ति करते हैं उनसे अपने हृदय की बात खोलकर करनी चाहिए ताकि वे भगवद्भक्ति का मार्ग प्रशस्त कर सकें।

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि हे मनुष्य! तुम रगड़–रगड़कर स्नान क्यों कर रहे हो? तथा कपड़ों को बार–बार धोकर अर्थात साफ–सुथरे कपड़े पहनकर तुम स्वयं को शुद्ध मानते हो। लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं है। इसके लिए

आंतरिक शुद्धि आवश्यक है। बाह्य शुद्धि से मोक्ष संभव नही है। बाह्य शुद्धि से प्रसन्न होकर हे मूर्ख! तू सुख की नींद मत सो। कहने का तात्पर्य है कि तू इस सुख–निद्रा और अज्ञान का त्याग करके आंतरिक शुद्धि की ओर अग्रसर हो ताकि मोक्ष की प्राप्ति हो सके।

दोहा सं. 55

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि तुम्हारा सगा–संबंधी यहां कोई नहीं है सब स्वार्थ के कारण एक–दूसरे से बंधे हुए हैं। अतः यहां तेरा वास्तविक साथी कोई नहीं है। आगे वे कहते हैं कि जब तक व्यक्ति के मन में प्रभु–प्रेम उत्पन्न नहीं होता तब तक उसको मुक्ति–प्राप्ति का विश्वास नहीं होता। कहने का तात्पर्य है कि भगवत–प्रेम उत्पन्न होने पर जीव भक्ति मार्ग की ओर अग्रसर होता है और सतत साधना करते हुए मुक्ति प्राप्त करता

दोहा सं. 62

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि जीवन रूपी नौका अत्यंत जर्जर है और इसके मल्लाह पूर्णरूपेण मूर्ख हैं, बेकार हैं। इस स्थिति में वे ही भवसागर पार कर सकते हैं जिनके सिर पर पाप का बोझ नहीं है अर्थात जो निर्मल, पवित्र एवं शुद्ध आत्मा वाले नहीं हैं और जो पापात्मा हैं अर्थात जिनके सिर पर पाप का बोझ है वे इस भवसागर में डूब जाते।

1.8 मन को अंग मन

मन के मते न चालिये, छाड़ि जीव की बाँणि।
ताकू केरे सूत ज्यूँ, उलटि अपूठा आँणि।।1।।
चिंता चिति निबारिए, फिर बूझिए न कोइ।
इंद्री पसर मिटाइए, सहजि मिलैगा सोइ।।2।।
आसा का ईधन करूँ, मनसा करूँ विभूति।
जोगी फेरी फिल करौं, यों बिनवाँ वै सूति।।3।।
कबीर सेरी साँकड़ी चंचल मनवाँ चोर।
गुण गावै लैलीन होइ, कछू एक मन मैं और।।4।।
कबीर मारूँ मन कूँ, टूक टूक है जाइ।
विष की क्यारी बोई करि, लुणत कहा पछिताइ।।5।।
इस मन को बिसमल करौं, दीठा करौं अदीठ।
जै सिर राखौं आपणां, तौ पर सिरिज अंगीठ।।6।।
मन जाणें सब बात, जाणत ही औगुण करै।
काहे की कुसलात, कर दीपक कूँ बैं पड़ै।।7।।
हिरदा भीतरि आरसी, मुख देषणां न जाइ।

मुख तौ तौपरि देखिए, जे मन की दुविधा जाइ।।8।।
मन दीया मन पाइए, मन बिन मन नहीं होइ।
मन उनमन उस अंड ज्यूँ, खनल अकासाँ जोइ।।9।।
मन गोरख मन गोविंदो, मन हीं औघड़ होड़।
जे मन राखै जतन करि, तो आपै करता सोइ।।10।।
एक जग दोसत हम किया, जिस गलि लाल कबाइ।
एक जग धोबी धोड़ मरै, तो भी रंग न जाइ।।11।।
पाणी ही तैं पातला, धूवाँ ही तै झींण।
पवनाँ बेगि उतावला, सो दोसत कबीरै कीन्ह।।12।।
कबीर तुरी पलांड़ियाँ, चाबक लीया हाथि।
दिवस थकाँ साँई मिलौं, पीछे पड़िहै राति।।13।।
मनवां तो अधर बस्या, बहुतक झीणां होइ।
आलोकत सचु पाइया, कबहूँ न न्यारा सोइ।।14।।
मन न मीया मन करि, सके न पंच प्रहारि।
सीला साच सरधा नहीं, इंद्री अजहुँ उद्यारि।।15।।
कबीर मन बिकरै पड़ा, गया स्वादि के साथ।
गलका खाया बख्ताँ अब क्यूँ आवै हाथि।।16।।
कबीर मन गाफिल भया, सुमिरण लागै नाहिं।
घणीं सहैगा सासनाँ, जम की दरगह माहि'।।17।।
कोटि कर्म पल मैं करै, यहु मन बिषिया स्वादि।
सतगुर सबद न मानई, जनम गँवाया बादि।।18।।
मैंमंता मन मारि रे, घटहीं माहै घेरि।
जबहीं चालै पीठि दै, अंकुस दे दे फेरि।19।।
मैंमंता मन मारि रे, नान्हाँ करि करि पीसि।
तब सुख पावै सुंदरी, ब्रह्म झलके सीसि।।20।।
कागद केरी नाँव री. पाँणी केरी गंग।
कहै कबीर केसे तिरूँ, पंच कुसंगी संग।।21।।
कबीर यह मन कत गया, जो मन होता काल्हि।
डूंगरि बूठा मेह ज्यूँ, गया निबाँणाँ चालि।।22।।
मृतक कूँ धी जौ नहीं, मेरा मन बी है।

बाजै बाव बिकार की, भी मूवा जीवै।।23।।

काटि कूटि मछली, छींके धरी चहोड़ि।

कोइ एक अषिर मन बस्या, दह मैं पड़ी बहोडि।।24।।

कबीर मन पंषी भया, बहुतक चढ़ा अकास।

उहाँ ही तैं गिरि पड़ा, मन माया के पास।।25।।

भगति दुबारा सकड़ा, राई दसवै भाइ।

मन तौ मैंगल लै रह्यो, क्यूँ करि सके समाइ।।26।।

करता था तो क्यूँ रह्या, अब करि क्यूँ पछताइ।

बोवै पेड़ बबूल का, अब कहाँ नै खाइ।।27।।

काया देवल मन धजा, विष्रै लहरि फरराइ।

मन चाल्याँ देवल चलै, ताका सर्बस जाइ।।28।।

मनह मनोरथ छाँड़ि दे, तेरा किया न होइ।

पाँणी मैं घीव गीकसै, तो रूखा खाइ न कोइ।।29।।

काया कसूं कमाण ज्यूँ, पंचतत्त करि बांण।

मारौं तो मन मृग को, नहीं तो मिथ्या जाँण।।30।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहे डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' खंड से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों को 59 अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'मन को अंग' साखी का आठवां अंग है, जिसमें कुल 30 दोहे संकलित हैं। इनमें मन की चंचलता और दृढ़ता के संबंध में बताते हुए कबीर साहब जी ने कहा है कि चंचलता साधना में बाधक है, विषय–विकारों की ओर धकेलने वाली है लेकिन भक्ति की दृढ़ता मुक्ति की सफलता निर्भर करती है।

दोहा सं. 1

व्याख्या

हे जीव! तुम्हें मन की इच्छा के अनुसार नहीं चलना चाहिए, उसका अनुकरण नहीं करना चाहिए। इसका अनुकरण विषय–वासनाओं का मार्ग प्रशस्त करना है। तम्हें मन के पीछे चलने की आदत को छुड़ा देना चाहिए। जिस तरह ताकू पर चढ़े कच्चे सूत को पिंडिया पर चढ़ा दिया जाता है ठीक उसी प्रकार मन की चंचलता का त्याग करक उसे भगवद्–भक्ति में लगा देना चाहिए।

दोहा सं. 3

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि मैं अपनी आशाओं का ईधन बना डालूं और इसे ज्ञान–यज्ञ में डाल दूं तथा मन में उठने वाले भावों को भी उसी में डालकर राख बना डालूं। फिर उस विभूति को लगाकर योगी का रूप धारण करके

प्रत्येक पल परम तत्व की प्राप्ति के लिए चक्कर लगाता रहूं। आगे वे कहते हैं कि इस तरह मैंने अपने जीवन रूपी सूत को कातते रहना है ताकि परमात्मा की प्राप्ति हो जाए।

दोहा सं. 13

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि मैंने मन रूपी घोड़े पर जीन डाल ली है और उसके कुशल संचालन के लिए संयम रूपी चाबुक को, अपने हाथ में ले लिया है। आगे वे कहते हैं कि मैं जीवन रूपी दिन में ही साधना के माध्यम से परमात्मा के दर्शन करना चाहता हूं क्योंकि मृत्यु रूपी रात्रि जीवन रूपी दिन के बीतने पर शीघ्र ही आलिंगनबद्ध कर लेगी अर्थात मेरी जीवन यात्रा अवरुद्ध हो जाएगी। परंतु भक्ति करते हुए साधना पथ पर अग्रसर होकर ही परम तत्व परमात्मा से महामिलन हो सकता है।

दोहा सं. 21

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि यह शरीर कागज रूपी नाव है। शरीर रूपी सरिता मोह–माया से परिपूर्ण है। कहने का तात्पर्य है कि भवसागर रूपी संसार विषय–विकारों के जल से भरा हुआ है। इस जीवन–यात्रा में काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह आदि पांच दुर्जन साथी हैं। जो भवसागर को पार करने में बाधा उत्पन्न करते हैं। ऐसी कठिन परिस्थितियों को पार करना मुश्किल है। कहने का भावार्थ है कि संसार रूपी सागर में पांच इंद्रियां ऐसी हैं जिनके मोह–पाश में बंधकर संसार को पार करना संभव नहीं है।

दोहा सं. 25

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि मेरा मन पक्षी बन गया और आकाश में बहुत दूर तक चढ़ गया और वहां से गिरकर माया के पास चला गया। कहने का तात्पर्य है कि साधक का मन रूपी पक्षी ब्रह्मरंध्र (शून्य) में पहुंच गया अर्थात मन ईश्वर की ओर उन्मुख हो गया था और शून्य प्रदेश में प्रवेश तो कर गया लेकिन विषय–विकार ग्रस्त होने पर वह ब्रह्मरंध्र के पास से नीचे गिर गया और मोह–माया में ही रम गया अर्थात वह पुनः भौतिक, लौकिक जगत की ओर लौट आया और सांसारिक बंधनों में बंध गया।

दोहा सं. 30

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि मैं अपने शरीर को धनुष की तरह कस लूं और पांचों तत्वों (क्षिति + जल+ पावक+जल+आकाश = शरीर) का बाण बना लूं, जिससे मन रूपी मृग का संधान कर डालूं, उसका वध कर दूं तो ठीक है अन्यथा मेरे सभी सदुपदेशों को मिथ्या जानना। कहने का आशय है कि चंचल मन को साधना द्वारा मार कर ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है, अन्यथा सभी साधना व्यर्थ हैं, झूठी हैं।

1.9 माया कौ अंग

जग हठवाड़ा स्वाद ठग, माया बेसाँ लाइ।

रामचरण नीका गही, जिनि जाइ जनम ठगाइ।।1।।

कबीर माया पापणी, फंध ले बैठि हाटि।

सब जग तो फंधै पड़ा, गया कबीरा काटि।।2।।

कबीर माया पापणी, लातै लाया लोंगे।

पूरी कीनहूँ न भोगई, इनका इहै बिजोग।।3।।

कबीरा माया पापणी, हरि सूँ करे हराम।

मुखि कड़ियाली कुमति की, कहण न देई राम।।4।।

जाँणी जे हरि को भजौ, मो मनि मोटी आस।

हरि बिचि घालै अंतरा, माया बड़ी बिसास।।5।।

कबीर माया मोहनी, मोहे जाँण सुजाँण।

भागाँ ही छूटै नहीं, भरि भरि मारै बाँण।।6।।

कबीर माया मोहनी, जैसी मीठी खाँड़।

सतगुर की कृपा भई, नहीं तो करती भाँड़।।7।।

कबीर माया मोहनी, सब जग घाल्या घाँणि।

कोइ एक जन ऊबरै, जिनि तोड़ी कुल की कॉणि।।8।।

कबीर माया मोहनी, माँगी मिलै न हाथि।

मनह उतारी झूठ करि, तब लागी डौलै साथि।।9।।

माया दासी संत की, ऊँभी देइ असीस।

बिलसी अरु लातौं, छड़ी सुमरि सुमरि जगदीस।।10।।

माया मुई न मन मुवा, मरि मरि गया सरीर।

आसा त्रिस्नाँ ना मुई, यों कहि गया कबीर।।11।।

आसा जीवै जग मरै, लोग मरे मरि जाइ।

सोइ मूबे धन संचते, सो उबरे जे खाइ।।12।।

कबीर सो धन संचिए, जो आगै कूँ होइ।

सीस चढ़ाए पोटली, ले जात न देख्या कोइ।।13।।

त्रीया त्रिण्णां पापणी, तासूँ प्रीति न जोड़ि।

पैड़ी चढ़ि पाछौं पड़े, लागै मोटी खोड़ि।।14।।

त्रिष्णा सींची नाँ बुझे, दिन दिन बढ़ती जाइ।

जबासा के रूप ज्यूँ, घण मेहाँ कुमिलाइ।।15।।

कबीर जग की को कहे, भौ जलि बूड़े–दास।

पारब्रह्म पति छाड़ि कर, करैं मानि की आस।।16।।

माया तजी तौ का भया, मानि तजी नहीं जाइ।

मानि बड़े गुनियर मिले, मानि सबनि की खाइ।।17।।

रामहिं थोड़ा जाँणि करि, दुनियाँ आगै दीन।

जीवाँ को राजा कहै, माया के आधीन।।18।।

रज बीरज की कली, तापरि साज्या रूप।

राम नाम बिन बूड़ि है, कनक काँमणी कप।।१०।।

माया तरवर त्रिविध का, साखा दुख संताप।

सीतलता सुपिनै नहीं, फल फीको तनि तापा

कबीर माया ढाकड़ी, सब किसही कौ खाडी

दाँत उपाणौं पापड़ी, जे संतौं नेड़ी जाइ।।21।।

नलनी सायर घर किया, दौं लागी बहुतेणि।

जलही माँहै जलि मुई, पूरब जनम लिपेणि।।22।।

कबीर गुण की बादली, ती तरबानी छाँति।

बाहरि रहे ते ऊबरे, भीगें मंदिर माँहिं।।23।।

कबीर माया मोह की, भई अँधारी लोई।

जे सूते ते मुसि लिये, रहे बसत कूँरोइ।।24।।

संकल ही तैं सब लहे, माया इहि संसार।

ते क्यूँ छूटे बापुड़े, बाँधे सिरजनहार।।25।।

बाड़ि चढ़ती बेलि ज्यूँ, उलझी, आसा फंध।

तूटै पणि छूट नहीं, भई ज बाना बंध।।26।।

सब आसण आस तणाँ, त्रिबर्तिके को नाहिं।

थिवरिति के निबहै नहीं, परिवर्ति परपंच माँहि।।27।।

कबीर इस संसार का, झूठा माया मोह।

जिहि घरि जिता बधावणाँ, तिहि घरि तिता अँवोह।।28।।

माया हमगौ यों कह्या, तू मति दे रे पूठि।

और हमारा हम बलू, गया कबीरा रूठि।।29।।

बुगली नीर बिटालिया, सायर चढ़ा कलंक।

और पँखेरू पी गए, हंस न बोवै चंच।।30।।

कबीर माया जिनि मिलें, सो बरियों वे बाँह।

नारव से मुनियर मिले, किसौ भरोसे त्याँह।।31।।

माया की झल जग जल्या, कनक काँमणी लागि।

कहुँ धौं किहि विधि राखिये, रुई पलेटी आगि।।32।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहे डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली 'साखी' खंड से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों का अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'माया कौ अंग' साखी का नौवां अंग है, जिस 10 दोहे संकलित हैं। इनमें कबीर साहब जी ने माया के विभिन्न रूपों का वर्णन किया। इसे परमात्मा प्राप्ति में बाधक बताया है। माया मनुष्य को अपने मोह–पाश में फंसा लेती है और प्रभु–भक्ति से विमुख कर देती है।

दोहा सं. 3

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि माया पापिनी है, वेश्या है। यह अपने आकर्षण से संपूर्ण संसार में विषय–वासनाओं के प्रति आकर्षित करती, उनके प्रति दृढ़ इच्छा शक्ति उत्पन्न करती है और संपूर्ण संसार को ठगती रहती है लेकिन इसका पूरा भोग किसी ने नहीं किया, यही मनुष्य का वियोग है जिसमें वह असफल रहा। कहने का तात्पर्य है कि जिस प्रकार वेश्या पर किसी का भी पूर्ण अधिकार नहीं होता और न ही उसका कोई पूर्ण उपभोग करता है, ठीक यही स्थिति माया की होती है।

दोहा सं. 7

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि यह माया मोहिनी है, यह खांड जैसी मीठी है। यह तो सद्गुरु की कृपा हो गई अन्यथा यह तो मुझे भांड बनाकर ही छोड़ती। कहने का तात्पर्य है कि सद्गुरु की कृपा एवं मार्ग दर्शन के फलस्वरूप ही मैं भगवद्–भक्ति की ओर अग्रसर हुआ, अन्यथा यह माया मेरा सर्वनाश करके ही छोड़ती, मुझे विनष्ट कर देती।

दोहा सं. 11

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि न माया ही मरती है और न मन ही मरता है बल्कि इनके मध्य यह शरीर धीरे–धीरे करके नष्ट हो रहा है। मानव माया के वशीभूत होकर आशा और तृष्णा को छोड़ नहीं सकता जिससे वह अपने शरीर को समाप्त कर लेता है अर्थात आशा और तृष्णा बनी रहती हैं। इन्हीं के कारण जीव आवागमन के बंधन में पड़ा रहता है फिर भी सांसारिक कामनाओं के प्रति आकर्षण कम नहीं हुआ।

दोहा सं. 24

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि यह माया मोहिनी है, सम्मोहक है, इसकी शक्ति अपार है। इसकी शक्ति से संपूर्ण संसार में अंधकार फैल जाता है। कहने का तात्पर्य है कि इसने संपूर्ण संसार को अपने मोहपाश में बांध रखा है,

जिससे चारों ओर अज्ञान का अंधकार व्याप्त है। जो प्राणी इस अज्ञान के अंधकार में सोए रहते हैं अर्थात जिनको ज्ञान नहीं है वे माया के द्वारा लूट लिए जाते हैं अर्थात वे अपने लक्ष्य को भूल जाते हैं। अंततः वे इस सार तत्व अर्थात परम तत्व परमात्मा को प्राप्त करने के लिए पछताते रहते हैं, रोते रहते हैं, छटपटाते रहते हैं।

दोहा सं. 28

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि इस संसार का माया–मोह व्यर्थ है, झूठा और क्षणिक है। कहने का तात्पर्य है कि सांसारिक बंधनों और मोह–माया में फंसना व्यर्थ है, सारहीन है। जिस घर में जितने उत्सव मनाए जाते हैं आनंदोल्लासपूर्वक जीवन व्यतीत किया जाता है उसमें उतने ही दुख विद्यमान हैं। कहने का तात्पर्य है कि संसार में हर सुख पर दुख की छाया मंडरा रही है।

दोहा सं. 31

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि हे मनुष्य! तू माया से प्रेम मत कर, भले ही वह तुझे सैकड़ों बार बुलाए। कहने का तात्पर्य है कि माया भले ही तुम्हें विभिन्न आकर्षणों के द्वारा तम्हें अपनी ओर लुभाने का प्रयास करे लेकिन तुम उसके चक्कर मे मत आना, क्योंकि उसने नारद जैसे मुनि श्रेष्ठ को भी निगल लिया था। तब उसका कैसे भरोसा किया जा सकता है। अतः माया से दूर रहना ही तुम्हारे लिए श्रेष्ठ है।

1.10 सहज कौ अंग

सहज सहज सबकौ कहै, सहज न चीन्है कोइ।
जिन्ह सहजै विषिया तजी, सहज कही जै सोइ।।1।।
सहज सहज सबको कहै, सहज न चीन्हें कोइ।
पाँचू राखै परसती, सहज कही जै सोइ।।2।।
सहजै सहजै सब गए, सुत बित कांमीण कांम।
एकमेक है मिलि रह्या, दास, कबीर रांम।।3।।
सहज सहज सबको कहै, सहज न चीन्हैं कोइ।
जिन्ह सहजै हरिजी मिलै, सहज कहीजै सोइ।।4।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहे डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावर 'साखी' खंड से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों को अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'सहज कौ अंग' साखी का दसवां अंग है. जिसमें 4 दोहे संकलित हैं। इनमें कबीर साहब जी ने सहज–साधना को प्रभु–प्राप्ति का सर्वोत्तम मार्ग बताया है। सहज साधना से एक आत्मा सहज रूप तथा सरल हृदय वाली हो जाती है पाखंड रहित हो जाती है।

दोहा सं. 2

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि इस संसार में सहज–सहज की पुकार, उसकी रट सभी लगाते हैं लेकिन उसे कोई पहचान नहीं सका। सहज साधना उसी की है जिसने अपनी पांचों इंद्रियों को वश में कर लिया है, और प्रभु–भक्ति

में अपना ध्यान लगा लिया है, साधक की यह अवस्था ही सहजावस्था है।

1.11 साँच कौ अंग

कबीर पूँजी साह की, तूं जिनि खोवै श्वार।
खरी बिगूचनि होइगी, लेखा देती बार।।1।।
लेखा देणाँ सोहरा, जे दिल साँचा होइ।
उस चंगे दीवाँन मैं, पला न पकड़े कोइ।।2।।
कबीर चित्त चमंकिया, किया पयाना दूरि।
काइथि कागद काढ़िया, तब दरिगह लेखा पूरि।।3।।
काइथि कागद काढ़ियां, तब लेखें वार न पार।
जब लग साँस सरीर मैं, तब लग राम सँभार।।4।।
यहु सब झूठी बंदिगी, बरियाँ पंच निवाज।
साचौ मारै झूठ पढ़ि, काजी करै अकाज।।5।।
कबीर काजी स्वादि बसि, ब्रह्म हतै तब दोइ।
चढ़ि मसीति एके कहै, दरि क्यूँ साचा होइ।।6।।
काजी मुलाँ भ्रमियाँ, चल्या दुनीं के साथि।
दिल थैं दीन बिसारिया, करद लई जब हाथि।।7।।
जोरी कलिर जिहै करै, कहते हैं ज जलाल।
जब दफतर देखंगा दई, तब हैगा कौंण हवाला।।8।।
जोरी कीयाँ जुलम है, माँगे न्याव खुदाइ।
खालिक दरि खूनी खड़ा, मार मुहे मुहि खाइ।।9।।
साँई से ती चोरियाँ, चोराँ सेतो गुझ।
जाँणैगा रे जीवड़ा, मर पड़ेगी तुझा ।।10।।
सेष सबूरी बाहिरा, क्या हज काबैं जाइ।
जिनकी दिल स्याबति नहीं, तिनकौं कहाँ खुदाए।।11।।
खूब खाँड है खोपड़ी, माँहि पड़ै बुक लूँण।
पेड़ा रोटी खाड़ करि, गला कटावै कौंण।।12।।
पापी पूजा बैसि करि, भषै मांस मद दोड़।
तिनकी दष्या मुकति नहीं, कोटि नरक फल होइ।।13।।

सकल बरण इकत्रा है, सकति पूजि मिलि खाँहि।

हरि दासनि की भांति करि, केवल जमपुरि जाँहि।।14।।

कबीर लज्या लोक की, सुमिरै नाही साच।

जानि बूझि कंचन तजै, काठा पकड़े काच।।15।।

कबीर जिनि जिनि जाँणियाँ, करत केवल सार।

सो प्राणी काहै चलै, झूठे जग की लार।।16।।

झूठे को झूठा मिलै, दूणाँ बधै सनेह।

झूठे कूँ साचा मिलै, तब ही तूटै नेह17।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहे डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' खंड से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों को 59 अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'सांच कौ अंग' साखी का 11वां अंग है, जिसमें कुल 17 दोहे संकलित हैं। इनमें कबीर साहब जी ने वास्तविक सत्य के बारे में अवगत कराया है।

दोहा सं. 5

व्याख्या

कबीर साहब जी काजी को संबोधित करते हुए कहते हैं कि हे काजी! तू दिन में पांच बार नमाज अदा करता है, यह पूजा–अर्चना झूठी है, सारहीन है, क्योंकि तुम सत्य का हनन करके झूठी पूजा–अर्चना को महत्व देते हो, ऐसा करके तुम निंदनीय कार्य कर रहे हो। कहने का तात्पर्य है कि तुम मूल तत्व को, मूल सत्य का तो स्मरण कर नहीं रहे हो अपितु बाह्य–आडंबरों को प्रश्रय दे रहे हो, ऐसा करके तुम सत्य से साक्षात्कार नहीं कर सकते क्योंकि तुम्हारी यह आस्था भेदभाव से परिपूर्ण है।

दोहा सं. 11

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि हे शेख! तू संतोष से बहुत दूर है। तू विषय–विकारों में लिप्त है। अशांत चितवृत्ति होने के कारण तुझे हज और काबा जाने से कोई लाभ नहीं अर्थात तुझे वहां भी कोई शांति नहीं मिल सकती क्योंकि जिस व्यक्ति का हृदय ही विकार–युक्त है, अर्थात पूर्ण नहीं है तो उसको परमात्मा की प्राप्ति कैसे हो सकती है! कहने का भाव है कि परमात्मा की प्राप्ति के लिए सच्चे एवं पूर्ण हृदय की आवश्यकता है।

दोहा सं. 17

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि इस मिथ्या संसार में यदि झूठे व्यक्ति से झूठा मिल जाता है तो उन दोनों में दुगुना प्रेम बढ़ जाता है और यदि झूठे व्यक्ति को सच्चा अर्थात सद्गुरु मिल जाता है तो उसका इस मिथ्या संसार से प्रेम संबंध टूट जाता है। कहने का तात्पर्य है कि वह मिथ्या संसार से विमुख होकर परम तत्व परमात्मा की ओर उन्मुख होता है जिससे मोह–माया आदि विकारों से मुक्त हो परम तत्व से एकाकार हो जाता है।

1.12 भ्रम विधौंसण कौ अंग

पाहण वेरा पूतला, करि पूजे करतार।
इही भरोसै जे रहे, ते बूड़े काली धारा।।1।।
काजल केरी कोठरी, मसि के कर्म कपाट।
पँहनि बोई पृथमी, पंडित पाड़ी बाट।।2।।
पाँहिन फंका पूजिए, जे जनम न देई जाब।
आँधा नर आसामुषी, यौही खोवै आब।।3।।
हम भी पाहन पूजते, होते रन के रोझ।
सतगुर की कृपा भई, डाया सिर थैं बोझ।।4।।
जेती दे षौ आत्मा, तेता सालिगराँम।
साथू प्रतषि देव हैं, नहीं पाथर सू कॉम।5।।
सेवै सालिगराम कुँ, मन की भ्रांति न जाइ।
सीतलता सुषिनै नहीं, दिन दिन अघकी लाइ।।6।।
सेवै सालिगराँम कूँ, माया सेती हेत।
बोढ़े काला कापड़ा, नाँव धरावै सेत।।7।।
जप तप दीसै थोथरा, तीरथ ब्रत बेसास।
सूवै सैबल सेविया, यों जग चल्या निरास।।8।।
तीरथ त सब बेलड़ी, सब जग मेल्या छाइ।
कबीर मूल निकंदिया, कोण हलाहल खाइ।।9।।
मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जाँणि।
दसवाँ द्वारा देहुरा, तामै जोति पिछाँणि।।10।।
कबीर दुनियाँ देहुरै, सोस नवाँवण जाइ
हिरदा भीतर हरि बसे, तूँ ताही सौ ल्यौ लाइ।।11।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहे डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली 'साखी' खंड से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों को 59 अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'भ्रम बिधौंसण को अंग' साखी का 12वां और जिसमें कुल 11 दोहे संकलित हैं। इनमें कबीर साहब जी ने सांसारिक प्राणियों को भ्रम का वर्णन करते हुए मूर्ति–पूजा का खंडन किया है और सांसारिक प्राणियों को मूर्ख बताया है।

दोहा सं. 6

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि शालिग्राम की सेवा करने से व्यक्ति के मन की भ्रांति शांत नहीं होती। ऐसा करने से उसे शांति स्वप्न में भी नहीं मिलती अपितु उसका सांसारिक दाह दिन–प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है। कहने का आशय यह है कि व्यक्ति को बाह्य आडंबरों का त्याग करके अपनी मूर्खता से स्वतंत्र होना चाहिए।

दोहा सं. 10

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि व्यक्ति को अपना मन मथुरा समझना चाहिए और हृदय को द्वारिका तथा शरीर को काशी के रूप में जानना चाहिए। इस शरीर का दशम द्वार अर्थात ब्रह्मरंध्र ही देवालय है, उसी में परम ज्योति को पहचानना चाहिए।

1.13 भेष कौ अंग

कर सेती माला जपै, हिरदै बहै डंडूल।
पग तौं पाला मैं गिल्या, भाजण लागी सूल।।1।।
कर पकरै अँगुरी गिनें, मन धावै चहुँ वीर।
जाहि फिरॉयों हरि मिलै, सो भया काठ की ठौर।।2।।
माला पहरै मनमुषी, ताथै कछु न होड़।
मन माला को फेरताँ, जुग उजियारा सोइ।।3।।
माला पहरे मनमुषी, बहुतै फिरै अचेत।
गाँगी रोले बहि गया, हरि सूँ नाँहीं हेत।।4।।
कबीर माला काठ की, कहि समझावै तोहि।
मन न लिखै आपणों, कहा फिरावै मोहि।।5।।
कबीर माला मन की, और संसारी भेष।
माला पहर्या हरि मिले, तौ अरहट के गलि वेष।।6।।
माला पहर्या कुछ नहीं, रुल्प मूवा इहि भारी।
बाहरि ढोल्या हींगलू भीतरि भरी भँगरि।।7।।
माला पहर्यां कुछ नहीं, काती मन के साथि।
जब लग हरि प्रकटै नहीं, तब लग पड़ता हाथि।। 8।।
माला पहयाँ कुछ नहीं, गाँठि हिरवा की खोइ।
हरि चरनूँ, चित्त राखिये, तौ अमरापुर होइ।।9।।
माला पहर्यां कुछ नहीं, भगति न आई हाथि।

माथौ मूंछ मुँडाइ करि, चल्या जगत के साथि।।10।।
साँई सेती साँच चलि, औरों सूँ सुध भाइ।
भावै लम्बे केस करि, भावै घुरडि मुडाइ।।11।।
कैसों कहा बिगादिया, जे मूडे सौ बार।
मन कौं न काहे मुडिए, जामै बिष विकार।।12।।
मन मेवासी मूँड़ि ले, केसों मूड़े काँड।
जे कुछ किया सु मन किया, केसों कीया नाँहि।।13।।
मुँह मुँडावत दिन गए, अजहूँ न मिलिया राम
रॉम नाम कहु क्या करें, जे मन कोण औरे कॉम।
स्वॉग पहरि सोरहा भया, खाया पीया मूँढि।
जिहि सेरी साधू नीकले, सो तौ मेल्ही मूँढि।।15।।
बेसनों भया तौ क्या भया, बूझा नहीं बिबेक।
छापा तिलक बनाइ करि, दगध्या लोक अनेक।।16।।
तन कौं जोगी सब करें, मन कों बिरला कोइ।
सब सिधि सहजै पाइए, जे मन जोगी होइ।।17।।
कबीर यहु तौ एक है, पड़दा दीया भेष।
भरम करम सब दूरि करि, सबहीं माँहि अलेष।।18।।
भरम न भागा जीव का, अनंतहि धरिया भेष।
सतगुर परचे बाहिरा, अंतरि रह्या अलेष।।19।।
जगत जहंदम राचिया, झूठे कुल की लाज।
तन बिनसे कुल बिनसि है, गह्या न रॉम जिहाज।।20।।
पष ले बूडी पृथमी, झूठी कुल की लार।
अलष बिसारौं भेष मैं, बूड़े काली धार।।21।।
चतुराई हरि नाँ मिले, ऐ बाताँ की बात।
निसप्रेही निरधार का, गाहक गोपीनाथ।।22।।
नवसत साजे कॉमनी, तन मन रही सँजोइ।
पीव के मन भावे नहीं, पटम कीयें क्या होइ।।23।।
जब लग पीव परचा नहीं, कन्याँ कँवारी जाँणि।

हथलेवा होसै लिया, मुसकल पड़ी पिछाँणि।।24।।

कबीर हरि की भगति का, मन मैं परा उल्लास।

मैं वासा भाजै नहीं, हूँण मतै निज वास।।25।।

मैं वासा मोई किया, दुरिजिन काढ़े दूरि।

राज पियारे रॉम का, नगर बस्या भरिपूरि।।26।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहे डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' खंड से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों को 59 अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'भेष कौ अंग' साखी का 13वां अंग है, जिसमें कुल 26 दोहे संकलित हैं। इनमें कबीर साहब जी ने झूठी माला जपने और झूठा भेष बनाने वाले लोगों की आलोचना की है।

दोहा सं. 4

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि मायाजनित संसार में माला पहनने वाले अज्ञानी बहुत से घूमते रहते हैं। जो परम तत्व परमात्मा से प्रेम न करके बाह्याडंबरों में संलिप्त रहते हैं। उनकी स्थिति ठीक वैसी ही होती है जैसे कोई गंगा स्नान के लिए जाए और उसके तीव्र प्रवाह में बह जाए। कहने का भाव है कि उस साधक को भगवान या गंगा के लिए सच्चा प्रेम नहीं है इसलिए उसकी स्थिति अत्यंत दयनीय हो जाती है।

दोहा सं. 7

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि माला धारण करने से कोई लाभ नहीं होने वाला। माला धारक इस भार से व्यर्थ ही दबकर मरता है। कहने का भाव है कि बाह्याडंबरों से परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती। ऐसे व्यक्ति की स्थिति उस बहुरूपिए जैसी होती है जो अपने शरीर पर, चेहरे पर हींगलू का लाल रंग पोत कर विभिन्न भूमिकाएं निभाता है लेकिन उसका भीतर विषय–वासनाओं की अग्नि से परिपूर्ण है।

दोहा सं. 17

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि इस संसार में शरीर के योगी तो सभी बन जाते हैं लेकिन मन का योगी कोई लाखों में एक होता है। जो सच्चे मन से योग को प्राप्त करता है उसे सब सिद्धियां सहज रूप से प्राप्त हो जाती हैं। कहने का तात्पर्य है कि बाह्य आडंबरों से सिद्धियों की प्राप्ति नहीं हो पाती उसके लिए तो मानसिक योग ही सहायक हो सकता है।

दोहा सं. 19

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि जीवात्मा की भ्रांति दूर न होने के कारण उसे असंख्य वेश धारण करने पड़ते हैं। कहने का आशय यह है कि माया के आवरण में बंधे होने के कारण जीव आवागमन के चक्कर में फंसा रहता है

और उसका परमात्मा से परिचय नहीं होता। लेकिन सद्गुरु ने उसे बाह्य परिचय मात्र से पहचान लिया जिससे परम तत्व परमात्मा सद्गुरु के अंतस में बस गए अर्थात ब्रह्म से उनका पूर्ण साक्षात्कार हो गया।

दोहा सं. 22

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि यह सार तत्व है कि चतुराई से हरि नहीं मिलते। इनके साक्षात दर्शन तो उस भक्त को होते हैं जो निस्पृह, निष्काम एवं निराश्रय है। कहने का तात्पर्य है कि बाह्याचारों और मोह–माया रहित साधक ही उसे प्राप्त कर सकते है अन्य कोई नहीं।

1.14 कुसंगति कौ अंग

निरमल बूंद अकास की, पड़ि गइ भोमि बिकार।
मूल विनंठा माँनबी, बिन संगति भठछार।।1।।
मूरिष संग न कीजिए, लोहा जलि न तिराइ
कदली सीप भवंग मुषी, एक बूंद तिहुँ भाइ।।2।।
हरिजन सेती रूसणाँ, संसारी सू हेत।
ते नर कदे न नीपजै, ज्यूँ कालर का खेत।।3।।
नारी मरूँ कुसंग की, केला काँठे बेरि।
वो हालै वो चीरिये, साषित संग न बेरि।।4।।
मेर नसाँणी मीच की, कुसंगति ही काल।
कबीर कहै रे प्राँणिया, बाँणी ब्रह्म सँभाल।।5।।
माषी गुड़ मैं गड़ि रही, पंष रही लपटाइ।
ताली पीटै सिरि धुनै, मीठै बोई माइ।।6।।
ऊँचे कुल क्या जनमियाँ, जे करणी ऊँच न होड़।
सोवन कलस सुरे भर्या, साधूँ निंद्या सोइ ।।7।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहे डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' खंड से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों को 59 अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'कुसंगति कौ अंग' साखी का 14वां अंग है, जिसमें कुल 7 दोहे संकलित हैं। इनमें कबीर साहब जी ने कुसंगति को प्रभु–प्राप्ति में एक प्रमुख बाधा के रूप में देखा है।

दोहा सं. 2

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि हमें मुर्खों की संगति कभी नहीं करनी चाहिए। जिस प्रकार लोहा पानी पर तैर नहीं

सकता, उसी प्रकार से मुर्ख और अज्ञानी लोग सद्विचारों से प्रभावित नहीं हो सकते। कहने का भाव यह है कि मूर्ख की संगति हमेशा कष्टदायी होती है। कवि पुनः कहता है कि यह संगति का ही प्रभाव है कि स्वाति नक्षत्र की एक बूंद भिन्न–भिन्न संगति में पड़कर भिन्न–भिन्न रूप धारण करती है। यदि वह केले में पड़ती है तो कपूर बन जाती है, सांप के मुख में पड़कर वह विष बनती है परंतु सीपी के मुख में पड़कर वह मोती का रूप धारण कर लेती है। कवि के कहने का भाव यह है कि संगति हो या कुसंगति उसका प्रभाव मनुष्य पर अवश्य पड़ता है। अपने इसी विचार को स्पष्ट करने के लिए कवि ने स्वाति नक्षत्र की ओसध्वर्षा की बंद का उदाहरण दिया।

दोहा सं. 4

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि आत्मा ईश्वर से कहती है कि कुसंगति से मैं उसी प्रकार दुखी और परेशान हूं जिस प्रकार केला बेरी के वृक्ष के पास खड़ा व्याकुल और परेशान होता है। बेरी का वृक्ष जब अपनी स्वच्छंद वृत्ति के कारण हवा चलने से मस्ती में हिलता है तो उसके कांटे केले के पत्ते को चीर देते हैं। उसी प्रकार से मैं भी शाक्तों की कुसंगति में रहकर बहुत दुखी हूं। अतः हे प्रभु इन शाक्तों को मुझसे दूर करो।

दोहा सं. 7

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि यदि कोई व्यक्ति ब्राह्मण आदि स्वर्ण हिंदू जातियों में जन्म लेकर भी सत्कर्म नहीं करता, तो उसका यह जन्म लेना व्यर्थ है। यदि व्यक्ति के कर्म उच्च नहीं हैं तो उच्च कुल में जन्म लेने का कोई लाभ नहीं है। यदि स्वर्ण कलश अर्थात सोने का घड़ा शराब से भरा है तो साधु जन तो उसकी भी निंदा करेंगे। कहने का भाव यह है कि यदि किसी व्यक्ति ने उच्च कुल में जन्म ले लिया है तो उसे कर्म भी अच्छे करने चाहिए तभी उच्च कुल में जन्म लेना सार्थक है। जैसे सोने के घड़े में यदि शराब भर दी जाए तो भी संत उसकी निंदा ही करेंगे। प्रशंसा नहीं करेंगे।

1.15 साध कौ अंग

करिय कबीर संगति साध की, कदे न निरफल होइ।

चंदन होसी बाँवना, नीब न कहसी कोइ।।1।।

कबीर संगति साध की, बेगि करीजै जाइ।

दुरमति दूरि गँवाइसी, देसी सुमति बताइ।।2।।

मथुरा जावै द्वारिका, भावै जावै जगनाथ।

साध संगति हरि भगति बिन, कछू न आवै हाथ।।३।।

मेरे संगी दोइ जणां, एक बैष्णों एक राँम।

वो है दाता मुकति का, वो सुमिरावै नाँन।।4।।

कबीरा बन बन में फिरा, कारणि अपणे राँम।

राम सरीखे जन मिले, तिन सारे सब काँम।।5।।

कबीर सोई– दिन भला, जा दिन संत मिलाहिं।

अंक भरे भरि भेटिया, पाप सरीरौ जाँहिं।।6।।

कबीर चन्दन का बिड़ा, बैठ्या आक पलास।

आप सरीखे करि लिए, जे होते उन पास।।7।।

कबीर खाईं कोट की, पाणी पीवे न कोई

आइ मिलै जब गंग मैं, सब गंगोदिक होइ।।8।।

जाँनि बूझि साचहि तजै, करैं झूठ सूँ नेह।

ताको संगति राम जी, सुपिनै हो जिनि देहु।।9।।

कबीर तास मिलाइ, जास हियाली तूँ बसै।

वहि तर वेगि उठाइ, नित को गंजन को सहै।।10।।

केती लहरि समंद की, कत उपजै कत जाइ।

बलिहारी ता दास की, उलटी माँहि समाइ।।11।।

काजल केरी कोठढ़ी, काजल ही का कोट।

बलिहारी ता दास की, जे रहै रॉम की ओट।।12।।

भगति हजारी कापड़ा, तामें मल न समाइ।

साषित काली काँवली, भावै तहाँ बिछाइ।।13।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहे डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' खंड से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों को 59 अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'साध कौ अंग' साखी का 15वां अंग है, जिसमें कल 13 दोहे संकलित हैं। इनमें कबीर साहब जी ने संतों की संगति के महत्व पर प्रकाश डाला है।

दोहा सं. 4

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि मेरे साथी दो जन हैं– एक वैष्णव और दसरे के लिए कल्याणकारी स्वयं भगवान (प्रभु) ही हैं। प्रभु तो मुझे मुक्ति देने वाले है और वैष्णव प्रभु का स्मरण करने की प्रेरणा देता है। कहने का भाव यह है कि प्रभु भक्ति मानव के लिए कल्याणकारी है क्योंकि उससे मनुष्य को मोक्ष की प्राप्ति होती है और विष्णु के भक्त हमेशा नाम स्मरण के लिए साधक को प्रवृत्त करता रहता है।

दोहा सं. 11

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि इस संसार रूपी सागर में न जाने कितनी लहरें उत्पन्न होकर नष्ट हो जाती हैं। कहने का भाव यह हैं कि संसार में अनेक प्रकार की घटनाएं होती रहती हैं। मानव आवागमन के चक्र में फंसा हुआ मृत्यु तथा जन्म को प्राप्त होता रहता है। जन्म लेने और मरने की यह प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। लेकिन कवि उस भक्त पर न्योछावर जाता है जो संसार में जन्म लेकर ईश्वर भक्ति द्वारा ब्रह्म में लीन हो जाता है अर्थात मोक्ष पा लेता है।

1.16 साध महिमाँ कौ अंग

चंदन की कुटकी भली, नाँ बँबूर अबराँउँ।
बैश्नों की छपरी भली, नाँ साषत का बड गाउँ।।1।।
पुरपाटण सूबस बसै, आनंद ठाये ठाँइ।
राँम सनेही बाहिरा, ऊँजड़ मेरे भाँइ।।2।।
जिहिं घरि साध न पूजिये, हरि की सेवा नाँहिं।
ते घर मरहट सारषे, भूत बसै तिन माँहि।।3।।
है गै गैंवर सघन घन, छत्रा धजा फहराइ।
ता सुख थै भिष्या भली, हरि सुमिरत दिन जाइ।।4।।
हैं गै गैंवर सघन घन, छत्रपति की नारि।
तास पटंतर नाँ तुलै, हरिजन की पनिहारि।।5।।
क्यूँ नृप नारी नींदये, क्यूँ पनिहारी कौं माँन।
वमाँग सँवारै पीव कौ, वा नित उठि सुमिरै राँम।।6।।
कबीर धनि ते सुंदरी, जिनि जाया बैसनों पूत।
राँम सुमिर निरभैं हुवा, सब जग गया अऊत।।7।।
कबीर कुल तौ सो भला, जिहि कुल उपजै दास।
जिहिं कुल दास न ऊपजै, सो कुल आक पलास।।8।।
साषत बाँभण मति मिलै, बैसनों मिलै चंडाल
अंक माल दे भटिये, माँनों मिले गोपाल।।9।।
राँम जपत दालिद भला, टूटी घर की छाँनि।
ऊँचे मंदिर जालि दे, जहाँ भगति न सारँगपाँनि।।10।।
कबीर भया है केतकी, भवर भये सब दास।
जहाँ जहाँ भगति कबीर की, तहँ तहँ राँम निवास।।11।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहे डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' खंड से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों को 59 अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'साध महिमां कौ अंग' साखी का 16वां अंग है, जिसमें कुल 11 दोहे संकलित हैं। इनमें कबीर साहब जी ने सच्चे साधुओं की महिमा का गुणगान किया है। उन्होंने अनेक असाधुओं की तुलना में थोड़े से साधु कहीं अधिक भले हैं।

दोहा सं. 3

व्याख्या

यहां कबीर साहब जी ईश्वर की भक्ति पर बल देते हए कहते हैं कि जिस घर में न तो साधओं की पूजा होती है और न भगवान की पूजा होती है, ऐसे घर श्मशान समान सुने और भयानक हैं। ऐसे घर में तो भूतों का निवास होता है। कहने का भाव यह है कि जिस घर परिवार में संतों की सेवा नहीं होती और भगवान की भक्ति नहीं होती उस घर–परिवार के लोग सांसारिक कष्टों को भोगते रहते हैं। यहां 'भूत' शब्द का प्रयोग सांसारिक क्लेशों/भयानकताओं के लिए ही किया गया है।

दोहा सं. 8

व्याख्या

कबीर साहब जी जी कहते हैं कि वही कुल अच्छा है जिसमें प्रभु भक्त जन्म लेता है। जिस कुल में प्रभु भक्त उत्पन्न नहीं होता, वे कुल आक और पलाश जैसे पेडों के समान प्रयोजन हीन हैं। कहने का भाव यह है कि वैष्णव कुल ही श्रेष्ठ है, क्योंकि उसमें जन्म लेने वाले सभी प्रभु भक्त होते हैं। जो वंश प्रभु भक्त नहीं हैं वे तो आक और पलाश के समान हैं।

1.17 मधि कौ अंगाला

कबीर मधि अंग जेको रहै, तौ तिरत न लागै बार।
दुई अंग सूँ लाग करि, डूबत है संसार।।1।।
कबीर दुविधा दूरि करि, एक अंग द्वै लागि।
यहु सीतल वहु तपति है, दोऊ कहिये आगि।।2।।
अनल अकाँसाँ घर किया, मधि निरंतर बास।
बसुधा ब्यौम बिरकत रहै, बिनठा हर बिसवास।।3।।
बासुरि गमि न रैंणि गमि, नाँ सुपनै तरगंम।
कबीर तहाँ बिलंबिया, जहाँ छाहड़ी न घंम।।4।।
जिहि पैडै पंडित गए, दुनिया परी बहीर।
औघट घाटी गुर कही, तिहिं चढ़ि रह्या कबीर।।5।।
श्रग नृकथै हूँ रह्या, सतगुर के प्रसादि।
चरन कँवल की मौज मैं, रहितूं अंतिरु आदि।।6।।
हिंदू मूये राम कहि, मुसलमान खुदाइ।
कहै कबीर सो जीवता, दुइ मैं कदे न जाइ।।7।।
दुखिया मूवा दुख कों, सुखिया सुख कौं झूरि।
सदा आनंदी राम के, जिनि सुख दुख मेल्हे दूरि।।8।।

कबीर हरदी पीयरी, चूना ऊजल भाइ।

रामसनेही यूँ मिले , दुन्यूँ बरन गँवाइ।।9।।

काबा फिर कासी भया, राँम भया रहीम।

मोट चून मैदा भया, बैठि कबीरा जीभ।।10।।

धरती अरु आसमान बिचि, दोइ तूँबड़ा अबध।

षट दरसन संसै पड़ा, अरु चौरासी सिध।।11।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहे डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' खंड से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों को 59 अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'मधि कौ अंग' साखी का 17वां अंग है, जिसमें कुल 11 दोहे संकलित हैं। इनमें कबीर साहब जी ने मध्यम मार्ग अपनाने की सलाह दी है।

दोहा सं. 2

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि हे मानव! तू पुनः संशय को त्याग दे अर्थात तू अतिवादी दृष्टियों के द्वंद्व को छोड़कर एकनिष्ठ होकर मध्यम मार्ग को अपना ले। यही मार्ग तेरे लिए श्रेयस्कर है। यह सोचना कि यह मत शांतिदायक है और यह मत परिताप देने वाला है, वह कहना भी दाहक है अर्थात अति शीतलता और अति तपन दोनों ही आग के समान हैं। और दोनों ही मानव को कष्ट प्रदान करती हैं। इसलिए मनुष्य को अतिवाद को त्यागकर मध्यम मार्ग को अपनाना चाहिए।

दोहा सं. 10

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि मध्य मार्ग को अपनाने से मुसलमानों के तीर्थ स्थल काबा और हिंदुओं के तीर्थ स्थल काशी में किसी प्रकार का अंतर नहीं रह जाता अर्थात काबा काशी बन जाता है और काशी काबा बन जाती है। दोनों संप्रदायों के राम तथा रहीम मिलकर एक हो जाते हैं। ये दोनों विरोधी धाराएं पहले मोटे आटे के समान थीं लेकिन मध्यम मार्ग का अनुसरण करने से ये दोनों अब सुंदर मैदा बन गई हैं। दोनों के मिलने से उत्पन्न आनंद का कबीर उपभोग कर रहे हैं।

1.18 सारग्राही कौ अंग

षीर रूप हरि नांव है, नीर आन ब्यौहार।

हंस रूप कोई साथ है, तात को जांनणहार।।1।।

कबीर साषत को नहीं, सबै बैशनों जाणि।

जा मुख राम न ऊचरै, ताही तन की हाँणि।।2।।

कबीर औगुंण ना गहै, गुँण ही कौ ले बीनि।

घट घट महु के मधुप ज्यूँ, पर आत्म ले चीन्हि।।3।।

बसुधा बन बहु भाँति हैं, फल्यौ फल्यो अगाया।

मिष्ट सुबास कबीर गहि, विषम कहै किहि साथ।।4।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहे डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर 'साखी' खंड से लिए गए है। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोनों अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'सारग्राही कौ अंग' साखी का 18वां अंग कुल 4 दोहे संकलित हैं। इनमें कबीर साहब जी जी साधक को नीर–क्षीर न्याय का सिद्धांत अपनाते हुए जीवन के सारतत्व को प्रमुख स्थान देना चाहिए।

दोहा सं. 4

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि इस संसार में अनेक प्रकार के वृक्षों वाला जंगल है। अनेक प्रकार के पेड़ यहां पर फले–फूले हुए हैं। कबीर जी कहते हैं कि हे जीव तुम इस संसार से मधुर सुगंध को ग्रहण करो। कड़वे फलों को ग्रहण करने से क्या लाभ? अर्थात कोई लाभ नहीं। कवि के कहने का अभिप्राय है कि इस संसार में अनेक प्रकार की आसक्तियां हैं। जिनका शिकार बनकर पुरुष मोह–माया में लीन हो जाता है। कबीर साधक को अनासक्ति और ज्ञान के द्वारा आनंद को प्राप्त करने की सलाह देते हैं।

1.19 उपदेश को अंग

हरि जी यहै बिचारिया, साषी कहाँ कबीर।

भौसागर मैं जीव है, जे कोई पकड़ें तीर।।1।।

कली काल ततकाल है, बुरा करौ जिनि कोइ।

अनबोवै लोहा दाहिणे, बोबै सु लुणता होइ।।2।।

कबीर संसा जीव मैं, कोई न कहै समझाइ।

बिधि बिधि बाणों बोलता, सो कत गया बिलाइ।।3।।

कबीर संसा दूरि करि, जाँमण मरण भरम।

पंचतत तत्तहि मिले, सुरति समाना मन।।4।।

ग्रिही तौ च्यंता घणी, बैरागी तौ भीष।

दुहुँ कात्याँ बिचि जीव है, दो हमैं संतौं सीष।।5।।

बैरागी बिरकत भला, गिरहीं चित्त उदार।

दुहै चूका रीता पड़े, ताकूँ वार न पार।।6।।

जैसी उपजै पेड़ मूं, तैसी निबहै ओरि।

पैका पैका जोड़ताँ, जुड़िसा लाष करोड़ि।।7।।

कबीर हरि के नाँव सूँ, प्रीति रहै इकतार।

तौ मुख तैं मोती झड़ै, हीरे अंत न पार।।8।।

ऐसी बाँणी बोलिये, मन का आपा खोइ।

अपना तन सीतल करै, औरन कौं सुख हाइ।।9।।

कोइ एक राखै सावधान, चेतनि पहरै जागि।

बस्तन बासन सँ खिसै, चोर न सकई लागि।।10।।

प्रसंग

प्रस्तत दोहे डॉ. श्याम संदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रथावला 'साखी' खंड से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दाहा । अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'उपदेश कौ अंग' साखी का 19वां अंग है, जिस 10 दोहे संकलित हैं। इनमें कबीर साहब जी जी ने साखियों के माध्यम से मनुष्य के अज्ञान को मिटाने का प्रयास किया है। इनमें कबीर साहब जी ने लोगों को ज्ञान की शरण में जाने की सलाह दी है। कबीर जी कहते है कि भगवान ने यह निश्चित विचार किया और मुझे आज्ञा दी कि तुम ज्ञान के भंडार साखियों को संसार के समक्ष प्रस्तुत करो। कहने का भाव यह है कि कवि यह घोषणा करता है कि प्रभु ने इउसे पृथ्वी तल पर इसलिए भेजा है कि वे अपने दोहे के द्वारा मनुष्य के अज्ञान को दूर करे प्रभु ने यह भी कहा कि इस संसार रूपी सागर में बहुत से प्राणी ऐसे है जो भव सागर से पार उतरने की आशा मन में लिए हुए है। शायद उनमें से कोई इन साखियों को सहकर पाकर भव सागर से पार उत्तर जाए।

दोहा –7

व्याख्या

कबीर साहब जी जीवात्मा को संबोधित करते हुए कहते हैं तुने सभी जीवन रूपी रत्न बेकार में नष्ट कर दिए हैं और ईश्वर की भक्ति नहीं की। यदि तूने थोड़ी–थोड़ी भी प्रभु भक्ति की होती तो आज तेरा जीवन सत्कर्मों से युक्त हो जाता। जैसे हम पैसा–पैसा जोड़कर लाखों की संपत्ति जोड़ लेते हैं। उसी प्रकार थोड़ी–थोड़ी भक्ति करके मनुष्य मुक्ति की अवस्था को प्राप्त कर लेता है। कहने का भाव है कि मानव ने अपने मूल चैतन्य को जिस रूप में प्राप्त किया था, अंत तक उसका संरक्षण और निर्वाह करना चाहिए। ध्यान और भक्ति का कण–कण जोड़ने से मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त कर लेता है।

1.20 बेसास कौ अग

जिनि नर हरि जठराँह, उदिके थैं षंड प्रगट कियौ।

सिरजे श्रवण कर चरन, जीव जीभ मुख तास दीयो।।

उरध पाव अरध सीस, बीस पषां इम रषियौ।

अंन पान जहां जरै, तहाँ तैं अनल न चषियौ।।

इहिं भाँति भयानक उद्र में, न कबहू छंछरै।

कृसन कृपाल कबीर कहि, इम प्रतिपालन क्यों करे।।1।।

भूखा भूखा क्या करै, कहा सुनावै लोग।

भांडा घड़ि जिनि मुख दिया, सोई पूरण जोग।।2।।

रचनहार कूँ चीन्हि लै, खैचे कूँ कहा रोई।
दिल मंदिर मैं पैसि करि, तांणि पछेवड़ा सोई।।3।।
राम नाम करि बोहड़ा, बांही बीच अधाइ।
अंति कालि सूका पड़ै, तौ निरफल कदे न जाइ।।4।।
च्यंतामणि मन में बसै, सोई चित्त मैं आंणि।
बिन च्यंता च्यंता करै, इहै प्रभू की बांणि।।5।।
कबीर का तूँ चितवै, का तेरा च्यंत्या होइ।
अणच्यंत्या हरिजी करै, जो तोहि च्यंत न होइ।।6।।
करम करीमां लिखि रह्या, अब कछू लिख्या न जाइ।
मासा घट न तिल बथै, जो कोटिक करै उपाइ।।7।।
जाकौ चेता निरमया, ताकौ तेता होइ।
रती घटै न तिल बधै, जो सिर कूटै कोइ।।8।।
च्यंता न करि अच्यंत रहु, सांई है संभ्रथ।
पसु पंषरू जीव जंत, तिनको गांडि किसा ग्रंथ।।9।।
संत न बांधै गाँठड़ी, पेट समाता लेइ।
साई सूँ सनमुख रहै, जहाँ माँग तहाँ देइ।।10।।
रामँ राँम सूँ दिल मिलि, जन हम पड़ी बिराइ।
मोहि भरोसा इष्ट का, बंदा नरकि न जाड़।11।।
कबीर तूँ काहे डरै, सिर परि हरि का हाथ।
हस्ती चढ़ि नही डोलिये, कूकर भूसैं जु लाष।।2।।
मीठा खाँण मधुकरी, भाँति भाँति कौ नाज।
दावा किसही का नहीं, बित बिलाइति बड़ राज।।3।।
मोनि महातम प्रेम रस, गरवा तण गुण नेह।
ए सबहीं अह लागया, जबहीं कह्या कुछ देह।।4।।
मँगण मरण समान है, बिरला वंचौ कोइ।
कहै कबीर रघुनाथ सूँ, मतिर मँगावै नाहि।।5।।
पांडल पंजर मन भवर, अरथ अनूपम बास।
राँम नाँम सींच्या अँमी, फल लागा वेसास।।16।।

मेर मिटी मुकता भया, पाया ब्रह्य बिसास।

अब मेरे दूजा को नहीं, एक तुम्हारी आस।।17।।

जाकी दिल में हरि बसै, सो नर कलपै काँइ।

एक लहरि समंद की, दुख दलिद्र सब जाँइ।।8।।

पद गाये लैलीन है, कटी न संसै पास।

सबै पिछीड़ै, थोथरे, एक बिनाँ बेसास।।19।।

गावण हीं मैं रोज है, रोवण हीं में राग।

इक वैरागी ग्रिह मैं, इक गृही मैं वैराग।।20।।

गाया तिनि पाया नहीं, अणगाँयाँ थैं दूरि।

जिनि गाया बिसवास सूँ, तिन राम रह्या भरिपूरि।।2।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहा डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली ''साखी' खंड से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों का अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'बेसास कौ अंग' साखी का 20वां अंग है, जिसमें कर 21 दोहे संकलित हैं। इनमें कबीर साहब जी जी प्रभु के प्रति विश्वास और आस्था पर अधिक बल दिया है। क्योंकि विश्वास तथा आस्था के बिना साधक को अपनी साधना सफलता नहीं मिल सकती।

दोहा सं. 6

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि हे मानव ! तू क्यों चिंता करता रहता है। तुम्हारे चिंता करने से होता भी क्या है? अर्थात मनुष्य अगर चिंता करे भी तो उससे कछ नहीं हो सकता। तुम अपने मन से चिंता को दूर कर दो यही तुम्हारे लिए उचित है क्योंकि प्रभु (ईश्वर) अप्रत्याशित (बिना सोचा हुआ काम) कर देते हैं। कहने का भाव है कि मानव जिसके बारे में सोच भी नहीं सकता, उसकी उसे प्राप्ति हो जाती है। इसलिए व्यर्थ की चिंता से कोई लाभ नहीं।

दोहा सं. 10

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि सच्चा साधु अपनी आवश्यकताओं के अनुसार ही सामग्री लेता है अर्थात वह भर पेट भोजन के अतिरिक्त कुछ नहीं लेता। संग्रह करके वह गठरी नहीं बांधता। ईश्वर हमेशा उसके सामने रहता है और जब भी वह आवश्यकतानुसार अपने प्रभु से मांगता है, वह उसे दे देता है। कहने का भाव है कि सच्चा साधु केवल उदर के बराबर का भोजन ही मांगता है, उससे अधिक नहीं।

दोहा सं. 17

व्याख्या

कवि कहता है कि मेरा ममत्व अर्थात अहंकार नष्ट हो जाने से अब में मुक्त हो गया हूं अथवा हम यूं कह सकते हैं कि मेरे मन से अहंकार निकल जाने पर मैं मोती के समान निर्मल हो गया हूं और मैंने प्रभु का विश्वास प्राप्त कर

लिया है। परंतु कवि ईश्वर को संबोधित करता हुआ कहता है कि हे प्रभु! आपके सिवाय मेरा और कोई नहीं है। मुझे केवल आप की ही आशा है।

दोहा सं. 21

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि जिन साधकों ने मन में अभिमान की भावना रखकर भगवान की भक्ति की है उन्हें भगवान प्राप्त नहीं हो सका। उधर जिन्होंने भगवान के गुणों का गान ही नहीं किया अर्थात जो प्रभु भक्ति में लीन ही नहीं हुए वे वैसे ही भगवान से दूर हो गए। परंतु जिन्होंने दृढ़ विश्वास के साथ प्रभु स्मरण किया। उनमें भगवान पर्णरूपेण प्राप्त हो गए। कहने का भाव है कि प्रभु के प्रति पूर्ण विश्वास रखने से ही उसकी भक्ति की जा सकती है और उसे पाया जा सकता है।

1.21 सबद कौ अंग

कबीर सबद सरीर मैं, बिनि गुण बाजै तंति।
बाहरि भीतरि भरि रह्या, तार्थं छूटि भरंति।।1।।
सती संतोषी सावधान, सबद भेद सुबिचार।
सतगुर के प्रसाद थैं, सहज सील मत सार।।2।।
सतगुर ऐसा चाहिए, जैसा सिकलीगर होइ।
सबद मसकला फेरि करि, देह द्रपन करे सोइ।।3।।
सतगुर साँचा सूरिवाँ, सबद जु बाह्या एक।
लागत ही में मिलि गया, पड़ा कलेजे छेक।।4।।
हरि रस जे जन बेधिया, सतगुण सी गणि नाहि।
लागी चोट सरीर में, करक कलेजे माँहि।।5।।
ज्यूँ ज्यूँ हरिगुण साभलूँ, त्यूँ त्यूँ लागै तीर।
साँठी साँठी झड़ि पड़ि, झलका रह्या सरीर।।6।।
ज्यूँ ज्यूँ हरिगुण साभलूँ, त्यूँ त्यूँ लागै तीर।
लागै थैं भागा नहीं, साहणहार कबीर।।7।
सारा बहुत पुकारिया, पीड़ पुकार और।
लागी चोट सबद की, रह्या कबीरा ठौर।।8।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहे डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' खंड से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों को 59 अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'सबद कौ अंग' साखी का 21वां अंग है, जिसमें कुल 8 दोहे संकलित हैं। इनमें कबीर साहब जी जी ने अनहद नाद की चर्चा की है।

दोहा सं. 4

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि सद्गुरु एक सच्चा शूरवीर है। उसने अपना एक ऐसा शब्द रूपी बाण साधक पर चलाया कि जिसके लगते ही साधक का अहंकार नष्ट हो गया और उसके हृदय में घाव हो गया अर्थात वह ईश्वरीय समाधि में डूब गया और संसार के संबंधों से उसका विच्छेद हो गया। कहने का भाव है कि गुरु कृपा से ही ज्ञान रूपी शब्द की प्राप्ति होती है और ज्ञान प्राप्त होने के बाद साधक की अहं भावना नष्ट हो जाती है और वह सांसारिक मोह माया से मुक्त हो जाता है। दोहा सं. 8

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि ढोंगी साधु प्रेम विरह का झूठा दिखावा बहुत करता है अर्थात वह शोर मचाकर बार–बार घोषणा करता है कि उसके मन में ईश्वरीय प्रेम का आघात है। लेकिन ईश्वरीय प्रेम की पीड़ा कुछ और ही होती है। उस पीड़ा से ग्रस्त सच्चे साधु प्रदर्शन नहीं करते। सच्चे गुरु की शब्द रूपी बाण की चोट जब कबीर साहब को लग गई तो उसका मन एक स्थान पर स्थिर हो गया है। वह अब किसी और की बात नहीं सुनता। वह तो अब प्रभु भक्ति में लीन है।

1.22 जीवन मृतक कौ अंग

जीवन मिरतक है रहै, तजै जगत की आस।
तब हरि सेवा आपण करै, मति दुख पावै दास।।1।।
कबिरा मन मिरतक भया, दुरबल भया सरीर।
तब पैडे लागा हरि फिरै, कहत कबीर कबीर।।2।।
कबीर मरि मड़हट रह्या, तब कोइ न बझै सार।
हरि आदर आगै लिया, ज्यूँ गउ बछ की लार।।३।।
घर जालौं घर उबरे, घर राखौं घर जाइ।
एक अचंभा देखिया, मड़ा काल कौं खाइ।।4।।
मरता मरताँ जग मुवा, औसर मवा न कोई।
कबीर ऐसैं मरि मुवा, ज्यूँ बहुरि न मरना होइ।।5।।
बैद मुवा रोगी मुवा, मुवा सकल संसार।
एक कबीरा ना मुवा, जिनि के राम अधार।।6।।
मन मार्यां ममता मुई, अहं गई सब छूटि।
जोगी था सो रमि गया, आसणि रही विभति।।7।।
जीवन थै मरिबो भलौ, जौ मरि जानै कोइ।
मरनै पहली जे मरे, तौ कलि अजरावर होइ।।8।।
खरी कसौटी राम की, खोटा टिके न कोइ।

राम कसौटी सो टिके, जो जीवन मिरतक होइ।।9।।

आपा मेट्या हरि मिले, हरि मेट्या सब जाइ।

अकथ कहाणी प्रेम की, कह्या न को पत्याइ।।10।।

निगु साँवाँ वहि जायगा, जाके थाघी नहीं कोड़।

दीन गरीबी बंदिगी, करता होइ सु होइ।।11।।

दीन गरीबी दीन को, दुँदर को अभिमान

दुँदर दिल विष सूँ भरी, दीन गरीबी राम।।12।।

कबीर चेरा संत का, दासिन का परदास।

कबीर ऐसे है रह्या, ज्यूँ पाऊँ तलि घास।।13।।

रोड़ा कै रही बाट का, तजि पाषंड अभिमान।

ऐसा जे जन कै रहे, ताहि मिले भगवान।।14।।

प्रसंग

प्रस्तुत दाहे डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' खंड से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों को 59 अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'जीवन मृतक कौ अंग' साखी का 22वां अंग है, जिसमें कुल 14. दोहे संकलित हैं। इनमें कबीर साहब जी जी यह स्पष्ट किया है कि जो साधक सांसारिक भोग–वासनाओं से अपने को मुक्त कर लिया है वह जीवित है और जो अभी भी इनमें फंसा हुआ है, वह मृत है।

दोहा सं. 2

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि जब साधक का मन मर जाता है अर्थात सांसारिक मोह माया से मुक्त हो जाता है और शरीर प्रभु भक्ति के कारण दुर्बल एवं क्षीण हो जाता है, तब भगवान ही भक्त के पीछे भागते फिरते हैं तथा उसे कबीर–कबीर कह कर पुकारते हैं। कहने का भाव है कि सांसारिक आकर्षणों को त्यागने वाले को भगवद्–भक्ति स्वयं प्राप्त हो जाती है।

दोहा सं. 8

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि विषय–वासनाओं में लीन रहना जीवन है और उन वासनाओं की निवृत्ति ही मृत्यु है। अतः भोग–विलास में लीन जीवन से मृत्यु ही अच्छी है, क्योंकि ऐसी मृत्यु से जीव अपने इस अज्ञान से मुक्त हो जाता है कि भोग विलास युक्त जीवन ही सच्चा जीवन है। लेकिन यह ज्ञान उसे ही प्राप्त हो सकता है जो इस प्रकार कि निवृत्ति की मृत्यु को भली प्रकार से समझ लेता है। जो साधक पांच तत्वों से बने शरीर के छटने (मृत्यु) से पहले ही वासनाओं से विरक्त हो जाते हैं (मृत्यु का वरण कर लेते हैं) वे इस कलियुग में तत्काल अजर–अमर हो जाते हैं। यदि हम 'अजरावर' शब्द का अर्थ आश्चर्यचकित लगाएं तो अर्थ होगा– कलियुग में ही यह आश्चर्यजनक बात होगी।

दोहा सं. 13

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि मैं (कबीर) संतों का सेवक हूं और मैं भक्तों का भी भक्त हूं। कहने का भाव यह है कि कबीर साहब ने न केवल संतों की शिष्यता ग्रहण की अपितु प्रभु भक्तों की शरण भी ग्रहण की। कबीर जी पुनः कहते हैं कि जिस प्रकार घास पांव के नीचे रहती है, लेकिन किसी प्रकार की प्रतिक्रिया नहीं करती, उसी प्रकार से मैं (कबीर) साधु–संतों और प्रभु भक्तों का विनम्र सेवक बन कर रहता हूं।

1.23 हेत प्रीति सनेह कौ अंग

कमोदनी जलहरि बसै, चंदा बसै अकासि।

जो जाही का भावता, सो ताही के पास।।1।।

कबीर गुर बसै बनारसी, सिष समंदा तीर।

बिमाराया नहीं बीसरे, जे गुण होइ सरीर।।2।।

जो है जाका भावता, जदि तदि मिलसी आइ।

जाकी तन मन सौंपिया, सो कबहूँ छाँड़ि न जाइ।।3।।

स्वामी सेवक एक मत, मन ही मैं मिलि जाइ।

चतुराई रीझै नहीं, रीझै मन के भाइ।।4।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहे डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' खंड से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों को 59 अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'हेत प्रीति सनेह कौ अंग' साखी का 23वां अंग है, जिसमें कल 4 दोहे संकलित हैं। इनमें कबीर साहब जी जी ने सच्चे प्रेम के महत्व को स्पष्ट किया है।

दोहा सं. 2

व्याख्या

साधक का गुरु अर्थात कबीर साहब तो काशी में रहता है और शिष्य वहां से बहुत दर समुद्र के किनारे पर बैठकर तपस्या में लीन है। परंतु अगर शिष्य तथा गुरु के अंतःकर्मों में सच्चा प्रेम है तो वे एक–दूसरे को कभी नहीं भूल सकते, क्योंकि यदि साधक गुणवान है और सच्चा ईश्वर–भक्त है, तो गुरु दूर रहकर भी उसे कभी नहीं भूल सकता।

1.24 काल कौ अंग

झूठे सुख को सुख कहैं, मानत है मन मोद।

खलक चवीणाँ काल का, कुछ मुख मैं कुछ गोद।।

आज काल्हिक जिस हमैं, मारगि माल्हंता।

काल सिचाणाँ नर चिड़ा, औझड़ औच्यंताँ।।2।।

काल सिहाँणै यों खड़ा, जागि पियारो म्यंत।
रामसनेही बाहिरा तूं, क्यूँ सोवै नच्यंत।।3।।
सब जग सूता नींद भरि, संत न आवै नींद।
काल खड़ा सिर उपरै, ज्यूँ तोरणि आया बींद।।4।।
आज कहै हरि काल्हि भजैगा, काल्हि कहे फिरि काल्हि।
आज ही काल्हि करतडाँ, औसर जासि चालि।।5।।
कबीर पल की सुधि नहीं, करै काल्हि का साज।
काल अच्यंता झड़पसी, ज्यूँ तीतर को बाज।।6।।
कबीर टग टग चोघताँ, पल पल गई बिहाइ।
जीव जँजाल न छाड़ई, जम दिया दमामा आइ।।7।।
मैं अकेला ए दोइ, जणाँ छेती नाहीं काँइ।
जे जम आगै ऊबरो, तो जुरा पहूँती आइ।।8।।
बारी–बारी आपणीं, चेले पियारे म्यंत।
तेरी बारी रे जिया, नेड़ी आवै निंत।।9।।
दों की दाधी लाकड़ी, ठाढ़ी करै पुकार।
मति बसि पड़ौं लुहार के, जालै दूजी बार।।10।।
जो ऊग्या सो आँथवै, फूल्या सो कुमिलाइ।
जो चिणियाँ सो ढहि पड़े, जो आया सो जाइ।।11।।
जो पहरया सो फाटिसी, नाँव धरया सो जाइ।
कबीर सोइ तत्त गहि, जो गुरि दिया बताइ।।12।।
निधड़क बैठा राम बिन, चेतनि करै पुकार।
यहु तन जल का बुदबुदा, बिनसत नाहीं बार।।13।।
पाँणी केरा बुदबुदा, इसी हमारी जाति।
एक दिनाँ छिप जाँहिंगे, तारे ज्यूँ परभाति।।14।।
कबीर यहु जग कुछ नहीं, बिन षारा षिन मीठ।
काल्हि जु बैठा माड़ियां, आज नसाँणाँ दीठ।।15।।
कबीर मंदिर आपणै, नित उठि करती आलि।
मड़हट देष्याँ डरपती, चौड़े दीन्हीं जालि।।16।।

मंदिर माँहि झबूकती, दीवा केसी जोति।
हंस बटाऊ चलि गया, काढ़ौ घर की छोति।।17।।
ऊँचा मंदिर धौलहर, माटी चित्री पौलि।
एक राम के नाँव बिन, जँम पाड़गा रौलि।।18।।
कबीर कहा गरबियो, काल गहै कर केस।
नाँ जाँणै कहाँ मारिसी, के घर के परदेस।।19।।
कबीर जंत्रा न बाजई, टूटि गए सब तार।
जंत्रा बिचारा क्या करै, चलै बजावणहार।।20।।
धवणि धवंती रहि गई, बुझि गए अंगार।
अहरणि रह्या ठमूकड़ा, जब उठि चले लुहार।।21।।
पंथी ऊभा पंथ सिरि, बुगचा बाँध्या पूठि।
मरणां मुँह आगै खड़ा, जीवण का सब झूठ।।।22।।
यहु जिव आया दूर थैं अजौ भी जासी दूरि।
बिच के बासै रमि रह्या, काल रह्या सर पूरि।।23।।
राम कह्या तिनि कहि लिया, जुरा पूहँती आइ
मंदिर लागै द्वार यै, तब कुछ काढणां न जाइ।।24।।
बरिया बीती बल गया, बरन पटट्या और।
बिगड़ीबात न बाहुणै, कर छिटक्याँ कत ठौर ।।25।।
बरिया बीती बल गया, अरू बुरा कमाया
हरि जिन छाडै हाथ थैं, दिन नेड़ा आय ।।26।।
कबीर हरि सूँ हेत करि, कूडै चित्त न लाव।
बाँध्या बार षटीक के, तापसु किती एक आव ।।27।।
बिष के बन मैं घर किया, सरप रहे लपटाइ।
ताथै जियरे डरै गह्या, जागत रैणि बिहाड़।।28।।
कबीर सब सुख राम है, और दुखाँ की रासि।
सुर नर मुनिवर असुर सब, पड़े काल की पासि।।29।।
काची काया मन अथिर, थिर थिर काम करता
ज्यूँ ज्यूँ नर निधड़क फिरै, त्यूँ त्यूँ काल हसंत।।30।।
रोवणहारे भी मुए, मुए जलाँवगहार

हा हा करते ते मुए, कासनि करौं पुकार।।31।।

जिनि हम जाए ते मुए, हम भी चालणहार।

जे हमको आगै मिलै, तिन भी बंध्या मार।।32।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहे डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' खंड से लिय गए हैं। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों को 59 अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'काल कौ अंग' साखी का 24वां अंग है, जिसमें कुल 32 दोहे संकलित हैं। इनमें कबीर साहब जी जी ने मृत्यु के विभिन्न रूपों और उसकी भयावहता पर प्रकाश डाला है।

दोहा सं. 7

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि हे मानव! टकटकी लगाकर देखते हुए और उदर पूर्ति करते हुए तुम्हारी सारी आयु व्यतीत हो गई है अर्थात मानव अपना सारा जीवन पेट भरने में ही गुजार देता है तथा भगवान की भक्ति नहीं करता। जीव इस संसार के बंधनों से अभी तक मुक्त नहीं हो सका और उसका अंतिम समय आ गया है। अब तो मृत्यु ने भी आकर कूच करने का नगाड़ा बजा दिया है। भाव यह है कि हे मानव ! अब इस संसार से विदा होने का तुम्हारा समय आ गया है।

दोहा सं. 10

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि दावाग्नि में जली हुई लकड़ी (कोयला बनी) खड़ी–खड़ी भगवान से पुकार कर कहती है अब मैं कोयला बन कर कहीं लुहार के बस में न पड जांऊ, क्योंकि मैं यदि लुहार के हाथ पड़ गई तो वह मुझे जलाएगा। लुहार कायला जलाकर अपनी भट्ठी गर्म करता है। इसलिए उसे दो बार जलना पडता है। पहले वह जल कर कोयला बन जाती है और फिर कोयले से राख बन जाती है।

दोहा सं. 13

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि ज्ञानी का शुद्ध अंतःकरण जीव से पुकार कर कहता है कि हे जीव ! तू राम के बिना निश्चिंत होकर क्यों बैठा है? अर्थात तू भगवान की भक्ति कर। उसी में तुम्हारा कल्याण है। यह शरीर तो पानी के बुलबुले के समान है। इसके नष्ट होने में देर नहीं लगती। भाव यह है कि साधक को ईश्वर की भक्ति करनी चाहिए। पता नहीं कब जीवात्मा शरीर को छोड़ कर चली जाए।

दोहा सं. 19

व्याख्या

कबीर साहब जी सांसारिक प्राणी को चेतावनी देते हुए कहते हैं कि हे मानव! तुम इस संसार में किस बात पर अभिमान कर रहे हो। मृत्यु ने तो तुम्हारे बालों को हाथ से पकड़ रखा है। पता नहीं यह काल तुम्हें कहां मारेगा? घर पर या विदेश में। कहने का भाव है कि मृत्यु का समय, स्थान तथा विधि निश्चित नहीं होती। यह जहां चाहे प्राणी को मार सकता है। अतः मनुष्य को घमंड नहीं करना चाहिए।

दोहा सं. 29

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि सभी सुखों की राशि एकमात्र प्रभु का नाम है। उसके स्मरण से ही मनुष्य को आनंद तथा सुखों की प्राप्ति होती है। अन्य सभी कार्य तो दुखों का समूह हैं अर्थात नाम स्मरण के अतिरिक्त अन्य जितने भी कार्य किए जाते हैं उन सब से मनुष्य को दुख की ही प्राप्ति होती है। कबीर साहब जी पुनः कहते हैं कि देवता, मुनि, राक्षस आदि सभी काल के बंधन में जकड़े हुए हैं। सभी को मृत्यु का शिकार बनना है। कोई भी मृत्यु के बंधन से मुक्त नहीं हो सकता। अतः मनुष्य को राम नाम का स्मरण करना चाहिए।

1.25 कस्तूरियाँ मृग कौ अंग

कस्तूरी कुंडलि बसै, मृग ढूँढे बन माँहि।
ऐसै घटि घटि रॉम हैं, दुनियाँ देखै नाँहि।।1।।
कोइ एक देखै संत जन, जाँके पाँचूँ हाथि।
जाके पाँचूँ बस नहीं, ता हरि संग न साथि।।2।।
सो साईं तन में बसै, भ्रम्यों न जाणै तास।
कस्तूरी के मृग ज्यूँ, फिरि फिरि सूंघे घास।।3।।
कबीर खोजी राम का, गया जु सिंघल दीप।
राम तौ घट भीतर रमि रह्या, जो आवै परतीत।।4।।
घटि बधि कहीं न देखिए, ब्रह्म रह्या भरपूरि।
जिनि जान्या तिनि निकट है, दूरि कहैं थे दूरि।।5।।
मैं जाँण्याँ हरि दूरि है, हरि रह्या सकल भरपूरि।
आप पिछाँणै बाहिरा, नेड़ा ही थें दूरि।।6।।
तिणके ओल्हे राम है, परबत मेहैं भाइ।
सतगुर मिलि परचा भया, तब हरि पाया घट माँहि।7।।
राम नाम तिहूँ लोक मैं, सकलहु रह्या भरपूरि।
यह चतुराई जाहु जलि, खोजत डोलैं दूरि।।8।।
ज्यूँ नैनूँ मैं पूतली, त्यूँ खालिक घट माँहि।
मूरखि लोग न जाँणहिं, बाहरि ढूँढण जाँहि।।9।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहे डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली' के साखी' खंड से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों को 59 अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'कस्तूरियां मृग कौ अंग' साखी का 25वां अंग है, जिसमें कुल 9 दोहे संकलित हैं। इनमें कबीर साहब जी जी मनुष्य की मृग– मरीचिका का वर्णन किया है। कबीर साहब कहते हैं कि ईश्वर तो प्रत्येक के हृदय में निवास के लोग भ्रमवश उसको यहां–वहां ढूंढ़ते रहते हैं।

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि परमात्मा प्रत्येक हृदय में निवास लेकिन भ्रम के कारण व्यक्ति उसे पहचान नहीं पाता। जैसे कस्तूरी मृग की। है लेकिन वह बार–बार घास को सूंघ कर उसे ढूंढ़ता फिरता है। इसी प्रकार मानव भी परम तत्व को बाहर संसार में खोजता है।

दोहा सं. 8

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि राम का नाम तो तीनों लोको है। आकाश–पाताल तथा पृथ्वी ये तीन लोक माने गए हैं। इन तीनों में ईश्वर निवास करता है। कबीर साहब जी कहते हैं कि ऐसी चतुरता तो नष्ट ही हो जाए तो अच्छा है जो प्रभु को दूर खोजती फिरती है।

1.26 निंद्या कौ अंग

लोगे विचारा नींदई, जिन्ह न पाया ग्यॉंन।
रॉंम नॉंव राता रहै, तिनहूँ, न भावै आँन।।1।।
दोख पराये देखि करि, चल्या हसंत हसंत।
अपने च्यँति न आवई, जिनकी आदि न अंत।।2।।
निंदक नेड़ा राखिये, आँगणि कुटी बँधाइ।
बिन साबण पाँणी बिना, निरमल करै सुभाइ।।3।।
न्यंदक दूरि न कीजिये, दीजै आदर माँन।
निरमल तन मन सब करै, बकि बकि आँनहिं आँन।।4।।
जे को नींदे साध कूँ, संकटि आवै सोइ।
नरक माँहि जाँमैं मरें, मुकति न कबहूँ होइ।।5।।
कबीर घास न नींदिये, जो पाऊँ तलि होइ।
उड़ि पड़े जब आँखि में, खरा दुहेली होडी।।6।।
आपन यौं न सराहिए, और न कहिए रंक।
नाँ जाँणौं किस ब्रिष तलि, कूड़ा होड़ करंक।।7।।
कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोई
आप ठग्याँ सुख ऊपजै, और ठग्याँ दुख होइ।।8।।
अब के जे साईं मिलैं, तौ सब दुख आपौ रोइ
चरनँ ऊपर सीस धरि, कहूँ ज कहणाँ होइ।।9।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहा डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' खंड से लिया गया है। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों को 59 अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'निंद्या कौ अंग' साखी का 26वां अंग है, जिसमें कुल 9 दोहे संकलित हैं। इनमें कबीर साहब जी जी ने लोगों द्वारा परनिंदा किए जाने की कड़ी आलोचना की है, लेकिन एक निंदक के महत्व को भी प्रतिपादित किया है।

दोहा सं. 4

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि निंदक को अपने से दूर कभी नहीं रखा चाहिए। बल्कि उसे तो समुचित आदर मान देकर हमेशा अपने समीप रखना चाहिए कारण यह है कि वह हमारे दोषों को बार–बार कहकर हमारे शरीर तथा मन को स्वच्छ एवं पवित्र कर देता है। निंदक का काम है लोगों के झूठे–सच्चे दोष खोजना। परंतु साधक के लिए निंदक लाभकारी है, क्योंकि वह उसके दोषों का बार–बार उल्लेख करता है।

दोहा सं. 8

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि हे संतजनो! तुम भले ही स्वयं ठगे जाओ पर दूसरों को कभी मत ठगो अर्थात तुम भले ही धोखा खा जाओ, पर दूसरों को धोखा देने से उनके ऐश्वर्य की हानि होती है। अतः संत के लिए यह दुख का कारण है। उसकी। आत्मा उसे कचोटती रहती है। इसलिए कवि ने स्वयं ठगे जाने को प्रशंसनीय कहा है।

1.27 बेलि कौ अंग

अब तो ऐसी द्वै पड़ी, नाँ तूँ बड़ी न बेलि।
जालण आँणी लाकड़ी, ऊठी कूँपल मेल्हि।।1।।
आगै आगै दौं जलें, पीछे हरिया होइ।
बलिहारी ता विरष की, जड़ काट्याँ फल होइ।।2।।
जे काटौ तो डहडही, सींचौं तौ कुमिलाइ।
इस गणवंती बेलि का, कुछ गुंण कहाँ न जाइ।।3।।
आँगणि बेलि अकासि फल, अण ब्यावर का दूध।
ससा सींग की धूनहड़ी, रमै बाँझ का पूत।।4।।
कबीर कड़ई बेलड़ी, कड़वा ही फल होइ।
साँध नाँव तब पाइए, जे बेलि बिछोहा होइ।।5।।
सींध भइ तब का भया, चहूँ दिसि फूटी बास।
अजहूँ बीज अंकूर है, भीऊगण की आस।।6।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहा डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' खंड से लिया गया है। इस ग्रंथ

में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों को 59 अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'बेलि कौ अंग' साखी का 27वां अंग है, जिसमें कुल 6 दोहे संकलित हैं। इनमें कबीर साहब जी जी ने सांसारिक विकारों का वर्णन किया है।

दोहा सं. 5

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि माया कचरी की बेल है जो कड़वी होती है। इस पर लगने वाले कचरी आदि फल भी मूलतः कड़वे होते हैं। जिस प्रकार कचरी का फल पकने पर बेल से अपने आप अलग होकर मीठा तथा सुगंधपूर्ण हो जाता है तब उसका नाम सेंध पड़ जाता है। इसी प्रकार से जब साधक माया से अलग हो जाता है तो वह सिद्ध कहलाता है और उसमें से भक्ति तथा ज्ञान की सुगंध फूटने लगती है।

1.28 अबिहड़ कौ अंग

कबीर साथी सो किया, जाके सुख दुख नहीं कोई।

हिलि मिलि है करि खेलिस्यूँ कदे बिछोह न होइ।।

कबीर सिरजनहार बिन, मेरा हितू न कोइ।

गुण औगुण बिहड़े नहीं, स्वारथ बंधी लोइ।।2।

आदि मधि अरु अंत लौं, अबिहड़ सदा अभंग।

कबीर उस करता की, सेवग तजै न संग।।3।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहे डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' खंड से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों को 59 अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'अबिहड़ कौ अंग' साखी का 28वां अंग है, जिसमें कुल 3 दोहे संकलित हैं। इनमें कबीर साहब जी जी ने लोगों को परमब्रह्म का साथ कभी न छोड़ने की सलाह दी है।

दोहा सं. 2

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि उस परमात्मा के बिना मेरा और कोई हितैषी नहीं है। संसार के अन्य प्राणी सभी स्वार्थी हैं। वे अपने स्वार्थ के कारण ही मेरी देखभाल करते हैं। लेकिन वह परमात्मा मुझे गुणयुक्त या गुणहीन होने पर भी किसी हालत में ही त्याग नहीं करेगा। इसलिए वह ईश्वर ही मेरा हित चाहने वाला है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

4. साखी के किस अंग में कबीर के चेतावनी भरे दोहों को संकलित किया गया है?
5. साधु व्यक्ति या सुसंगति का महत्व किस अंग की साखियों से दृष्टिगोचर होता है?
6. कबीर साहब द्वारा मृत्यु के विभिन्न रूपों का वर्णन जिन दोहों में मिलता है उन्हें किस अंग में संकलित किया गया है?

सारांश

भारतीय साहित्येतिहास में भक्तियुगीन कवियों का विशेष स्थान है। निर्गुण भक्ति शाखा के प्रमुख हस्ताक्षर कबीर साहब ने एक समाज सुधारक की भूमिका निभाई और अपनी रचनाओं से विभिन्न प्रकार के आडंबरों, पाखंडों तथा मानवीय कमजोरियों पर वज्रपात किया। इस इकाई में हमने कबीर के दोहों का समग्र अध्ययन किया। डॉ. श्यामसुंदर दास ने कबीर ग्रंथावली में 'साखी' खंड के अंतर्गत कबीर साहब के 809 दोहों को विभिन्न भावों के आधार पर 59 अंगों में संकलित किया है। आपके पाठ्यक्रम में इनमें से 28 अंगों का अध्ययन निर्धारित है। इन 28 अंगों की साखियों की व्याख्या से हमने समझा कि कबीर ने सांसारिक भोगलिप्साओं, विषय–वासनाओं, माया–मोह आदि की भर्त्सना करते हुए लोगों को इससे सावधान रहने की चेतावनी दी है, और प्रभु–भक्ति को जीवन का मुख्य ध्येय बताया है। कबीर ने अपने दोहों के माध्यम से सच्चे साधु का चरित्र, संगति, कुसंगति का महत्व एवं सद्गुरु की महिमा का वर्णन किया है।

कबीर सच्चे अर्थों में एक युगांतरकारी साहित्यकार थे क्योंकि उन्होंने समाज में व्याप्त अनेकानेक बुराइयों को न सिर्फ रेखांकित किया अपितु उनकी कठोर आलोचना भी का। कबीर के ये दोहे 'गागर में सागर' अद्वितीय मिसाल हैं।